# युग-संदेश

[ सामाजिक उपन्यास ]

लेखक

पृथ्वीनाथ शर्मा

बी० ए० ( आनर्स ), एल-एल. बी.

प्रकाशक

हिन्दी-भवन

जालंधर और इलाहाबाद

दूसरा संस्करण ]

[ मूल्य ३॥)

प्रकाशक—
इन्द्रचन्द्र नारंग
हिन्दी-भवन
३१२ रानी मंडी
इलाहाबाद



पहला संस्करण—सितम्बर १९४९
दूसरा संस्करण—मई १९५१

मुद्रक—
इन्द्रचन्द्र नारंग
हिन्दी-भवन मुद्रणालय
३१२ रानी मंडी
इलाहाबाद

# युग-सन्देश

## पहला परिच्छेद

चीड़ के गगनचुम्बी वृक्षों की दो पंक्तियों को चीरती हुई वह ऊबड़-खाबड़, किन्तु सीधी सड़क कोठी के द्वार तक चली गई थी। रात के नौ बजे के लगभग का समय था। सोमेश अपनी बारहवर्षीया चाँद-सी सुन्दर बेटी मीनाक्षी का हाथ पकड़े टहल रहा था। नीले नभ में पूर्णिमा का चाँद हीरक-से तारों से मानो क्रीड़ा करता हुआ खिल रहा था। कोठी के बरामदे में तीन-चार कुरसियाँ पड़ी थीं। उन्हीं में से एक कुरसी पर सोमेश की बहन सुभद्रा चुपचाप बैठी थी। कुछ दूर और कुछ निकट से दो-तीन जल-प्रपातों का हृदयहारी स्वर वातावरण में संगीत बिखेरता हुआ हृदय में हलचल मचा रहा था। सुभद्रा के हृदय में भी हलचल छिड़ी हुई थी; किन्तु जल-प्रपात उसका कारण न था।

अभी हाल ही में सुभद्रा ने अपने बेटे रमेश का विवाह किया था। उसी विवाह द्वारा उपजी कुछ समस्याओं ने उसके जीवन में हाहाकार मचा दिया था। आज बैठी वह उन्हीं समस्याओं से निपटने में संलग्न थी। अपनी पुत्रवधू तारा को यदि कहीं वह दासी का रूप प्रदान कर सकती, तो उसका जीवन कितना सुखमय, कितना अद्भुत हो जाता! किन्तु कहाँ? उसके लाख यत्न भी कहीं पहुँच न

पाते थे। कभी उसके पुत्र की उद्दण्डता और कभी तारा की शान्त गम्भीरता उसे परास्त कर देती थी। बल, छल और कौशल द्वारा वह अपने वकील पति हरिदत्त को भी अपने पक्ष में ला चुकी थी; पर कचहरी का वह मगर इस गार्हस्थ्य क्षेत्र में सीधा न तैर पाता था, पग-पग पर फिसलता था।

'क्या सोच रही हो बहन?'—घूमता हुआ जब सोमेश उस तक पहुँचा, तो उसने पूछा।

'कुछ नहीं।'—सुभद्रा ने उदासीन स्वर में जवाब दिया।

सोमेश वहीं से लौट पड़ा और फिर टहलने लगा। इतने में सोमेश के निकट से होता हुआ हरिदत्त बरामदे में जा पहुँचा।

'अभी तक यहीं बैठी हो?'—उसने सुभद्रा से पूछा और सामने वाली कुरसी पर बैठकर अपनी नेकटाई की गाँठ खोलने लगा।

'हाँ, तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठी हूँ। खाना खाओगे न?'

'नहीं, आज रास्ते में लाहौर के सैशन जज मिल गए। उन्हीं के यहाँ से खाकर आया हूँ। तुम लोगों ने क्या अभी तक नहीं खाया?'

'खानेवाले खा चुके हैं; मैं अभी खा लूँगी। सोमेश का व्रत है।'

'इसका तो प्रति तीसरे दिन व्रत होता है। सारे विलायत की दस वर्ष खाक छानी और फिर भी पण्डित के पण्डित!'

बात सोलहों आने ठीक थी। सोमेश जूनियर-केम्ब्रिज की परीक्षा पास करने पर कोई तेरह वर्ष की अवस्था में विलायत भेज दिया गया था। इसके अनन्तर उसकी समस्त शिक्षा-दीक्षा विलायत में हुई। उसके पिता बहुत बड़े व्यापारी थे, इसलिए रुपए की कमी न थी। सोमेश जितना माँगता था, उसे भेज दिया जाता था। सब परीक्षाएँ आठ

वर्ष में उसने पास कर लीं, किन्तु फिर भी देश न लौटा। दो वर्ष तक सारे यूरोप की सैर करता रहा। उसके पिता आस्तिक ब्राह्मण अवश्य थे; पर पश्चिमी सभ्यता की ओर उनका झुकाव था। वे स्वयं मांसादि न खाते थे; पर सोमेश ने तो वहाँ सब-कुछ खाया ही था। इसलिए सोमेश के आने की सूचना पाने पर उन्होंने एक बहुत बढ़िया बावर्ची का इन्तज़ाम कर लिया। उसके लिए एक अलग कोठी भी ठीक कर ली। किन्तु सोमेश बिलकुल भिन्न प्रकृति का था। जहाज से उतरते ही उसने मांसादि खाना छोड़ दिया। पिता के पास पहुँचने से पहले वह हरद्वार पहुँचा। गंगा में स्नान किया। आध इंच मोटा जनेऊ धारण किया और निश्चित दिन से एक दिन पहले ही धोती-कुरता पहने सबको आश्चर्य में डालता हुआ घर जा पहुँचा।

यद्यपि वह बैरिस्टर बनकर आया था; किन्तु इस पेशे की ओर उसने देखा तक नहीं। पुस्तकों के कुछ बक्स तथा अपनी पत्नी को साथ लेकर वह पिता की मसूरीवाली कोठी में जा पहुँचा और अध्ययन में निमग्न हो गया। पर यह अवस्था बहुत दिनों तक न चल सकी। वृद्धावस्था के कारण उसके पिता काम-काज भली-भाँति न देख पाते थे, इसलिए विवश होकर उसे पिता का व्यापार सँभालना पड़ा। यद्यपि उसका मन व्यापार में न लगता था; पर चूँकि वह स्वभावतः प्रखरबुद्धि था, इसलिए उसके हाथ में आते ही व्यापार और भी चमक उठा और कुछ ही काल में वह चोटी का व्यापारी बन गया। किन्तु ज्यों-ज्यों उसका धन बढ़ता जाता था, हरि-चिन्तन की ओर उसकी रति भी बढ़ती जाती थी। विलायत से लौटने के पाँच ही

वर्ष बाद एक वर्ष की लड़की छोड़कर उसकी पत्नी स्वर्ग सिधार गई; पर उसने दूसरे विवाह का नाम न लिया। उसी मसूरी वाली कोठी में छुट्टियाँ बिताने सुभद्रा आजकल सपरिवार आई हुई थी।

'तो तुम तो खा लो।'—हरिदत्त ने पत्नी से कहा।

'खा लेती हूँ।'

'रमेश कहाँ है?'

'जहाँ सारा समय रहता है, वहीं। तारा को लेकर सोने गया है।'

'इतनी जल्दी?'

'और क्या?' और सुबह दस बजे से पहले दोनों हिलने तक के नहीं।'

'निर्लज्ज कहीं के!'—वकील महोदय ज़रा ऊँचे स्वर में दाँत पीसकर बोले।

'निर्लज्ज कौन, जीजा जी?'—सोमेश ने पूछा। वह घूमता हुआ उस समय ठीक उनके निकट आ पहुँचा था।

'यही रमेश और तारा की बात कर रहे थे। इस युग को न-जाने क्या आग लग गई है, सोमी?'

सोमी ने एक बार तीखी नजर से अपने बहनोई को देखा, फिर उसकी दृष्टि अपनी बहन पर जम गई। विवाह के कुछ ही काल बाद, जब सोमेश लगभग आठ-नौ वर्ष का था, तो ये दोनों एक वर्ष इनके यहाँ रहे थे। इन दोनों के क्रीड़ा-कलाप के कुछ धुँधले, कुछ स्पष्ट चित्र अभी तक सोमेश के मस्तिष्क पर अंकित थे। उनमें से कुछ चित्र सहसा बिजली की नाईं उसके सम्मुख कौंध गए। वह

को बल देकर मुसकराया और बोला—'आग! कौन जाने, कब-

कब किस-किस को लग चुकी है !'

यह कहकर वह बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये चुपके से मीना की अँगुली पकड़े अपना रास्ता नापने लगा।

———

# दूसरा परिच्छेद

सुभद्रा और उसके पति के चले जाने के अनन्तर भी सोमेश अपनी बेटी की अँगुली पकड़े ज्यों-का-त्यों टहलता रहा। चारों ओर रात्रि की नीरव छाया फैल रही थी। निद्रादेवी अलबेली मस्ती लेकर उन दोनों की आँखों की पुतलियों में नृत्य करने लगी। सोमेश ने तो उसे ढकेल कर दूर हटा दिया, किन्तु मीना को उसने परास्त कर दिया।

'मैं तो अब सोऊँगी पिताजी !' उसने कहा—'चलो, चलें।'

सोमेश ने आधा क्षण अपनी बेटी की ओर देखा और कहा—'तुम चलो, वाल्मीकि-रामायण का एकाध अध्याय पढ़ो, मैं अभी आता हूँ।'

मीना अपने पिता की अँगुली छुड़ाकर शयन-कक्ष की ओर चल दी और सोमेश ने बरामदे में पड़ी हुई कुर्सी उठाकर आँगन में रख दी और अपना ड्रेसिंग-गाऊन समेटता हुआ उस पर बैठ गया। निर्मल नीले आकाश में चाँद अभी तक खिल रहा था। उसकी चाँदनी चारों ओर फैल रही थी। सोमेश एक मिनट उस हृदय-हारी चाँद को अपने सागर-से गहरे नेत्रों से एकटक देखता रहा; फिर उसकी कल्पना इर्द-गिर्द के वातावरण में मँडराने लगी। आज

उसने अपनी बड़ी बहन का जो रूप देखा था, क्या आज से पचीस वर्ष पहले उसका अस्तित्व स्वप्न-सृष्टि में भी हो सकता था ? सुभद्रा सोमेश से आठ साल बड़ी थी, इसलिए बचपन में अनेक बार सोमेश के वह कान उमेठ चुकी थी। उसकी ताड़ना में कितना अपनत्व था, उसके स्नेह में कितनी मधुरता थी, सोमेश आज भी सोचता, तो उसे रोमांच हो आता था। किन्तु पिता का घर छोड़ते और पति की छत्र-छाया में पहुँचते ही सुभद्रा की काया पलट गई। उसका स्नेह केवल दिखावा मात्र रह गया और ताड़ना का स्थान चतुर ईर्ष्या ने ले लिया। वह पग-पग पर तेरे और मेरे की समस्या उपस्थित करने लगी। इतनी निर्मल, इतनी महान आत्मा इतने थोड़े काल में इतनी क्षुद्र, इतनी मलिन हो गई कि पैनी दृष्टि से देखनेवाले चकित थे। किन्तु भाई-बहन में प्रतिद्वन्द्विता होती ही है, यह कहकर उसकी उस क्षुद्रता की तीक्ष्णता को कुछ क्षीण कर दिया जाता था।

और आज उसने अपनी बहन का बिलकुल ही नया रूप देखा। क्या माँ अपनी सन्तान से भी ईर्ष्या कर सकती है ? यह उसने अब तक न सोचा था; पर आज तो प्रत्यक्ष देख लिया। सुभद्रा ने ईर्ष्या का जो स्तर अपनाया था, वह कितना निम्नकोटि का था, यह सोचते-सोचते ही सोमेश के शरीर में ग्लानि की एक कँपकँपी दौड़ गई। अपने बेटे के ऊपर इतनी बड़ी लांछना लादते हुए वह ज़रा भी नहीं सकुचाई। आखिर उसका दोष भी क्या है। लाख यत्न करने पर भी रमेश के व्यवहार में सोमेश को कहीं भी अनौचित्य नहीं दीखता था। और यह भी कौन कह सकता था कि सुभद्रा और उसके पति ने जिस बात की ओर संकेत किया था, वह सचमुच ही सत्य थी। हो सकता है

कि रमेश वासना का इतना क्रीतदास न हो, जितना उसके माता-पिता समझ रहे थे। और तारा ? उस बेचारी के विषय में कोई भी धारणा इतनी जल्द बना लेना उसके प्रति घोर अन्याय के अतिरिक्त कुछ कहा ही नहीं जा सकता था। उसके व्यक्तित्व को विकसित होने का अवसर तो मिलना ही चाहिए। सोमेश इन्हीं विचारों में तल्लीन था कि रमेश वाली कोठरी से निकलती हुई एक छाया-सी दृष्टि-गोचर हुई। यह इतनी रात गये कौन उधर से आ रहा है, सोमेश ने सोचा। इतने में वह व्यक्ति कुछ निकट आ गया। वह रमेश था। ठीक उसी समय सोमेश और रमेश की दृष्टि एक-दूसरे से टकरा गई। रमेश ज़रा सिटपिटा-सा गया और लौटने का उपक्रम करने लगा। उसे यह आशा न थी कि इतनी रात गये उसके मामा रास्ते में बैठे होंगे। वह थोड़ा हिचकिचाकर आगे बढ़ता चला गया।

'आप अभी तक सोये नहीं ?'—जब रमेश अपने मामा के निकट पहुँच गया, तो उसने पूछा।

'और तुम इतनी रात गये किसकी तलाश में निकले हो ?'—सोमेश ने रमेश को सिर से पाँव तक देखा। रमेश अभी तक सूट पहने हुए था। 'तुम क्यों नहीं सोये ?'

'आपकी दी हुई पुस्तक के कुछ पृष्ठ बच रहे थे, मैं उन्हें खतम करने की धुन में हूँ।'

'अच्छा, हक्सले के "Point Counter Point" ने तुम्हें भी बाँध लिया ! और तारा ?"

'वह मेरा पुलओवर समाप्त करने की होड़ लगाये बैठी है।'

'और अब ?'

'अब कुछ नहीं।' रमेश ने ज़रा लज्जित स्वर में कहा—'यूँ ही निकला था।'

'यूँ ही कैसे ? क्या चाहिए ?'

'कुछ भी तो नहीं।'

'बताते क्यों नहीं ?'

'मैं···मैं···दियासलाई की तलाश में निकला था।'

सोमेश मुसकराया और बोला—'भई, मेरे पास तो है नहीं। वह तो रसोईघर में ही मिलेगी। वहाँ से ले लो।'

'वहाँ मैं न जा सकूँगा। खाने के कमरे में पिताजी और माँ बैठे हैं। खैर, कोई बात नहीं। न सही।'

'तुम न जा सकोगे, तो यहीं ठहरो। मैं अभी लाये देता हूँ।'

'आप ?'—रमेश का स्वर प्रशंसा से ओतप्रोत था।

'क्यों नहीं ?'

सोमेश ने एक ही मिनट में दियासलाई लाकर रमेश को दे दी। रमेश ने मधु-मिश्रित स्वर से अपने मामा का धन्यवाद किया और दियासलाई लेकर लौट गया।

रमेश के चले जाने के अनन्तर सोमेश जहाँ-का-तहाँ कुछ क्षण खड़ा रहा। अपनी बहन की क्षुद्रता, जो कुछ ही मिनट पहले एकाएक उसके ध्यान में आई थी, अब विकराल रूप धारण करके उसके सम्मुख आ खड़ी हुई। उसके जी में तो आता था कि वह अपनी बहन के सामने चमचमाता दर्पण रख दे, जिससे वह अपना चेहरा प्रत्यक्ष देख ले। किन्तु कैसे ? उससे शायद यह न हो सकेगा। आखिर वह उनके घर के मामले में दखल देनेवाला कौन है, यह सुनने की उसकी

इच्छा न थी। यही सब-कुछ सोचता हुआ सोमेश धीरे-धीरे अपने सोने के कमरे की ओर बढ़ने लगा।

---

# तीसरा परिच्छेद

दूसरे दिन प्रातःकाल ही सोमेश अपनी बेटी को लेकर घूमने निकल गया। शायद इसी स्वर्ण-अवसर से लाभ उठाकर सुभद्रा और उसके पति ने अपने बेटे रमेश को बुलवा भेजा। वह रात को देर से सोया था, इसलिए आँखें मलता हुआ माता-पिता की आज्ञा का पालन करने जा पहुँचा।

'कहिए ?'—उसने अर्ध-निमीलित नेत्रों से उनकी ओर देखते हुए पूछा।

उसके पिता एक आरामकुरसी पर अधलेटे-से पड़े थे और माता उठकर बैठी अवश्य थी; किन्तु उसने चारपाई न छोड़ी थी। वकील महोदय ने गला साफ़ किया और ज़रा तीखे स्वर में कहा—'जानते हो आज क्या तारीख है ?'

'हाँ', रमेश के चेहरे पर एकाएक आश्चर्य की छाया फैल गई, "'२६ सितम्बर। पर आप क्यों पूछ रहे हैं मैं समझा नहीं।'

'तुम क्यों समझोगे !' पिता के स्वर में तीखा व्यंग्य था, 'मैं तुम्हें केवल यह याद दिलाना चाहता हूँ कि पहली अक्टूबर को कचहरियाँ खुलनेवाली हैं।

'फिर ?'

'फिर यही कि अब यहाँ से चलने की तैयारी करो, चल के काम-

काज सँभालो। ऐश बहुत दिन कर लिया! और देखो, वकालत बहुत ईर्ष्यालु प्रेयसी है, इसलिए जब तक उसे जीत नहीं लो, किसी और का ध्यान तुम्हें नहीं करना होगा।'

यह कहकर हरिदत्त विष से बुझे हुए स्वर में हँसे। इन वाक्यों का क्या आशय है, रमेश पलक मारते ही समझ गया। किन्तु अपने पिता द्वारा की गई इस क्षुद्र तथा अनुचित चोट का वह क्या जवाब दे, उसे समझ नहीं आता था। यह ठीक है कि वह इन्हीं माता-पिता का पुत्र था; पर लाख यत्न करने पर भी वह उनके स्तर तक न गिर सकता था। उसका चेहरा कानों तक लाल हो गया। बहुत कठिनता से उसने अपने आप को सँभालने की कोशिश की; किन्तु फिर भी ज़रा थिरकते स्वर में बोला—"मैं आपसे पहले भी कह चुका हूँ कि मैं वकालत न कर सकूँगा।'

'क्यों ?'—पिता चिल्लाया।

'तो फिर भीख माँगो।'—माता तमतमा कर बोली।

'इसलिए कि मुझे यह पेशा नहीं भाता।' पिता के प्रश्न का उत्तर देकर रमेश ने माँ की ओर देखा और कहने लगा—'आपने मुझे इस योग्य बना दिया है कि शायद भीख माँगने का अवसर न आए।'

'तो इसीलिए'—दोनों क्रोध से पागल होकर बोले—'तुम अब हमें मिट्टी के लोदे समझ रहे हो! कृतघ्न कहीं का!'

'यह आपकी भूल है।' नेत्रों में छलकते हुए आँसुओं को रोकते हुए रमेश ने कहा और चुपके से वहाँ से टलने लगा।

'जाते कहाँ हो? ठहरो। यह समझ लो कि तुम्हें वकालत करनी ही होगी।'—पिता क्रुद्ध स्वर में बोला!

'मैं नहीं कर सकूँगा।' नेत्रों के आँसू पोंछते हुए रमेश ने जवाब दिया और भागता हुआ वहाँ से चला गया।

रमेश के बाहर निकलते ही वकील ने अपनी पत्नी की ओर देखा और पत्नी ने पति की ओर। आधा क्षण दोनों के नेत्र एक-दूसरे से उलझे रहे, जैसे वे एक-दूसरे को तौल रहे हों। आखिर वकील का पलड़ा भारी रहा।

'यह सब तुम्हारा दोष है।' वे अपनी पत्नी पर बरस पड़े—'यदि तुमने इसको न बिगाड़ा होता, तो मैं एक मिनट में इसे ठीक राह पर ले आता। ऐसे छोकरे तो क्या बड़े-से-बड़े चतुर भी मेरे सामने नहीं ठहर सकते। किन्तु तुम तो घर में विभीषण हो। यदि कहीं तुम...'

'बस, रहने दीजिए। उस लड़के से तो बात करते बनी नहीं और मेरे ऊपर रोब गाँठने चले हो! अपनी चतुराई आप उन्हीं मस्तिष्क-रहित सब-जजों को दिखाया करो।' सुभद्रा उतावली से अपनी चारपाई से उठी और नये फौजी रँगरूट की भाँति पग बढ़ाती हुई कमरे से बाहर हो गई। बाहर लॉन में दो-तीन कुरसियाँ थीं, उनमें से एक पर जा बैठी।

हरिदत्त कुछ देर ज्यों-का-त्यों अपनी आरामकुरसी पर पड़ा रहा। इस नई उलझन को कैसे सुलझाया जाय, यही वह सोच रहा था। पुत्र से तो शायद वह किसी तरह निपट लेता; पर पत्नी के क्रोध को ठंडा करना उसके बस की बात न थी। इसलिए प्रायः वह अपनी पत्नी के साथ झगड़ा करने से हिचकिचाता था। परन्तु आज स्थिति ही कुछ ऐसी बन गई कि वह अपने-आपको न सँभाल सका। अपनी कुरसी से उठा। जिधर सुभद्रा गई थी, चल दिया और जाकर उसके

सामने वाली कुरसी पर बैठ गया। किन्तु सुभद्रा ने उसकी ओर देखा तक नहीं, ज्यों-की त्यों बैठी रही। वकील चाहते थे कि सुभद्रा से बातचीत करने का कोई अवसर निकले, किन्तु पत्नी की मुखाकृति कुछ करने न देती थी। इसी तरह बैठे-बैठे पाँच मिनट बीत गये। ठीक उसी समय मीना की अँगुली पकड़े मुसकराता हुआ सोमेश घूमकर लौटा। कोठी में घुसते ही उसने टेढ़ी नजर से इस दम्पती की ओर देखा। वह एक क्षण में ही भाँप गया कि मामला बेढब है। इसलिए उसने उनसे बचकर निकल जाने का निश्चय किया और उतावली से कोठी की ओर बढ़ने लगा। पर कहाँ!

'देखो सोमी,' सुभद्रा उठकर तीर की तरह खड़ी हो गई और क्रुद्ध सिंहनी की भाँति बोली—'तुम्हें हमारे लड़के को बिगाड़ने का क्या हक है?'

सोमेश के ओठों पर खेलती हुई मुसकराहट और भी खिल उठी—'मैंने उसे बिगाड़ा है? वह कैसे?'

'वकालत के पेशे की निन्दा करके।'

'बहन, तुमने मेरे मुँह से कभी निन्दा सुनी?'

'यदि मैंने नहीं सुनी, तो इसका यह तो मतलब नहीं कि तुमने निन्दा नहीं की। यदि तुम्हें यह पेशा पसन्द है, तो तुमने बैरिस्टरी क्यों नहीं की?'

सोमेश खिलखिला कर हँसा—'यह भी खूब रही। इसका मेरे पास कोई जवाब नहीं।'

'खैर, कुछ भी हो, रमेश का वकालत करने से इनकार केवल तुम्हारे कारण है। पर यह समझ लो, यदि तुमने रमेश को गुमराह करने

की कोशिश की, तो तुम्हारे लिए ठीक न होगा।'

'गुमराह कैसे?'

'अपनी किसी कंपनी में नौकरी देकर।'

'यदि रमेश इस योग्य होगा और मेरे निकट आने की इच्छा करेगा, तो मैं अवश्य उसे अपनी किसी कंपनी में पद दूँगा। इसके लिए मुझे किसी से भी पूछने की जरूरत न होगी।' सोमेश ने शान्त-गम्भीर स्वर में कहा।

'माँजी, आप यूँही चिन्ता कर रही हैं;' रमेश, जो न-मालूम कहाँ से आकर एकाएक खड़ा हो गया था, चुपके से बोला—'आप निश्चय रखें, मैं मामा जी की किसी भी कंपनी में नौकरी नहीं करूँगा। मुझे इस ढंग का दान भी स्वीकृत नहीं।'

रमेश की बात सुनकर तीनों चकित हो गए, किन्तु बोला कोई भी नहीं। रमेश जैसे वहाँ आया था, वैसे ही देखते-देखते वहाँ से खिसक गया।

---

# चौथा परिच्छेद

रमेश जब अपने कमरे में पहुँचा, तो तारा अधलेटी-सी आराम-कुरसी पर पड़ी थी। उसने अर्द्ध-निमीलित बड़े-बड़े नेत्रों से पति के घबराये हुए मुख की ओर देखा और उसके सुन्दर ओठों पर मुसकान की एक रेखा खिंच गई। छोटी किन्तु तीखी हिम की भाँति श्वेत नाक भी मानो ओठों के साथ ही मुसकरा उठी। उसका उन्नत ललाट और उस पर खेलते हुए काले कुन्तल खिल-खिल पड़ते थे।

'मैं', कमरे में घुसते हुए रमेश ने गरजकर कहा—'कभी भी वकालत नहीं करूँगा।'

'तो न कीजिए, नाथ!' तारा व्यंग्य की हँसी हँस कर बोली—'किन्तु क्रोध तो छोड़िए।'

'देखो तारा', तारा का पति खीझकर बोला—'यह हँसी की बात नहीं, यह मेरे लिए जीवन और मृत्यु का प्रश्न है।'

'जीवन और मृत्यु?' तारा कुरसी पर सीधी बैठ गई। उसके नेत्र एकाएक पूर्ण रूप से खुल गये। उनमें से निकला हुआ हृदयहारी तेज रमेश के चेहरे पर जा फैला। उसके स्वर में एकाएक गम्भीरता आ गई—'मृत्यु का नहीं, हाँ जीवन का प्रश्न अवश्य तुम्हारे सम्मुख आ खड़ा हुआ है।'

'मृत्यु का क्यों नहीं? वकालत करूँगा नहीं और यदि और काम न मिलेगा, तो फिर भूखों ही मरना होगा।'

'भूखों तुम नहीं मर सकते, इतनी क्षमता तुममें अवश्य है, यह मैं जानती हूँ। हाँ, विलासिता का नाच शायद नाचने को न मिल सके। ऐश्वर्य की गोद शायद छोड़नी पड़े। यदि ऐश्वर्य और विलासिता का खो जाना तुम्हारे लिए मृत्यु है, तो दूसरी बात है।'

ऐश्वर्य और विलासिता को मैं पाँव की एक ठोकर से दूर हटा सकता हूँ।'—दम्भ भरे स्वर में रमेश जरा जोश से बोला।

'तो फिर घबराने की क्या बात है? किन्तु उन्हें हटाने के लिए दम्भ का आश्रय छोड़कर तुम्हें विनय को अपनाना होगा। अपना सकोगे?'

'अपना सकूँगा?' रमेश कुछ विस्मित-सा, चकित-सा अपनी पत्नी

की ओर देखने लगा। अभी उसके विवाह को छः ही महीने हुए थे। वह दिन-प्रतिदिन तारा का भिन्न-भिन्नतर रूप ही देखता जा रहा था। अभी तक इस कोमलांगी नारी का रूप-सौन्दर्य तथा हाव-भाव उसे आकर्षित करते चले आ रहे थे, पर आज उसने तारा का जो रूप देखा, वह भूलने-भुलाने की चीज़ ही न थी। क्या उल्लिखित बातचीत वह सचमुच तारा के साथ ही कर रहा था? चरित्र की इतनी ऊँचाई अपने इतना निकट पाकर वह गद्‌गद हो उठा और उसी तारा को, वह सोचने लगा, उसके माता-पिता विलासिता की भट्ठी समझ रहे हैं। उन्हें कौन समझावे और कैसे? और समझाने से लाभ ही क्या है?

'अपना सकूँगा, यह निश्चित रूप से तो नहीं कह सकता', उसने स्नेह से ओतप्रोत नेत्रों से तारा की ओर देखते हुए कहा—'किन्तु इसका प्रयत्न अवश्य करूँगा।'

तारा का चेहरा एकाएक शान्त हो गया। 'बहुत ठीक;' वह सन्तोष-भरे स्वर में बोली—'विनय तुम सीख लोगे, इसका मुझे पूरा विश्वास है।

'किन्तु तुम्हें तो मेरा साथ देना ही होगा तारा!'

'मुझे? इसे कहने की क्या ज़रूरत है, मैं तो तुम्हारी ही हूँ और तुम्हारी ही रहूँगी। हम दोनों संसार की कठिन-से-कठिन दुस्तर-से-दुस्तर चट्टानों को चीरते हुए आगे बढ़ेंगे, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है। कई बार तुम्हें घायल होना पड़ेगा, मैं जानती हूँ। किन्तु मैं अपने श्वासों की उष्णता से तुम्हारे घावों को सहलाती चलूँगी। शायद कभी मुझे भी चोट आ जाय; किन्तु वह तुम्हारे पाँवों में बैठ कर ही छूमन्तर हो जायगी, इसलिए घबराओ नहीं। यदि आज तुम्हारे माता-

पिता तुम्हारी आकांक्षाओं में बाधा डालना चाहते हैं, तो तुम हृदय में उनसे विमुख न होओ। उनका आशीर्वाद लेकर अपना पथ पकड़ो। संसार विशाल है और समय की हमारे पास कमी नहीं। इसलिए हम सफल अवश्य होंगे।'

'हाँ, अवश्य होंगे।' रमेश के मुख से अनायास निकला। तारा के उद्‌गारों को सुनने के बाद कोई कायर भी शायद असफलता का ध्यान नहीं कर सकता था और रमेश तो एक सत्यप्रिय, सुलझा हुआ, कर्तव्यनिष्ठ युवक था। पूर्वी खिड़की को चीरती हुई सूर्य की रश्मियों का एक समूह कमरे के फ़र्श के एक भाग से छेड़-छाड़ कर रहा था। रमेश को ऐसा लगा कि यदि तारा उसका साथ दे, तो उन रश्मियों द्वारा सूर्यलोक में पहुँचना भी उसके लिए असम्भव न होगा! सांसारिक सफलता प्राप्त करना तो अब बच्चों के खेल की नाईं उसको दीख रहा था।

इतने में बाहर से किसी ने द्वार खटखटाया।

'कौन है?'—रमेश द्वार की ओर बढ़ते हुए बोला।

'मामाजी होंगे।'—तारा के मुँह से निकला।

'हाँ, मैं ही हूँ,' कमरे में घुसते हुए सोमेश ने जवाब दिया। 'क्या निश्चय किया तुम लोगों ने, यही पूछने आया हूँ।'

'आपको कैसे मालूम हुआ कि हम कुछ निश्चय करने बैठे हैं?'

'इसलिए कि मैं तुम्हारा मामा हूँ और तारा मेरी बेटी है।'

'बेटी!' हर्षातिरेक से तारा के नेत्रों में आँसू छलछला उठे। आगे बढ़कर तारा ने सोमेश की चरण-रज अपने मस्तक पर लगाई। सोमेश ने उसे रोका नहीं, उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोला—'बेटी,

जिसे तेरा सहारा मिल गया, वह पार लग गया, इसमें सन्देह नहीं। तुम्हारी आत्मा कितनी उच्च, कितनी निर्मल है, यह मैंने तुम्हारी एक ही झलक में देख लिया था !' अबकी उसकी दृष्टि रमेश पर जा लगी—'इस देवी की बात को न ठुकराना।'

सोमेश ने तारा के सिर को एक बार फिर सहलाया, रमेश की पीठ थपथपाई और दोनों को चकित-सा छोड़कर जैसे आया था, वैसे ही लौट गया।

'मामाजी कितने महान हैं !'—तारा बोली।

'हाँ। किन्तु क्या कोई कह सकता है कि ये मेरी माँ के भाई हैं ?'

'ऐसी कृतघ्नता की बात न करो।'

'कृतघ्नता ! क्या मैं सचमुच कृतघ्न हूँ ?' रमेश ने एक बार अपनी पत्नी की ओर देखा, फिर पास पड़ी हुई कुरसी पर बैठ गया और आँखें मूँद कर गहरे सोच में डूब गया।

## पाँचवाँ परिच्छेद

सन्ध्या की बेला थी। सूर्यदेव पहाड़ियों के पीछे छिप चुके थे; किन्तु उनकी अरुणाई नभ पर अभी तक छाई हुई थी। पहाड़ी पक्षियों के झुंड-के-झुंड आकाश को चीरते हुए अपने घर की राह नाप रहे थे। कोठी के बाहर लॉन में कुरसी पर बैठी तारा एक चित्रमय पत्रिका के पृष्ठ उलट रही थी और उसके निकट ही खड़ा रमेश मुँह के एक कोने में सिगरेट दबाये आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की ओर देख रहा था। कुछ देर वह यूँ ही खड़ा रहा। सिगरेट के एक-दो कश

खींचे, दो-चार कदम चला और फिर वहीं आ खड़ा हुआ। एकाएक सिगरेट को मुँह से निकाल कर फेंक दिया और उससे निकलते हुए धुएँ की लकीर की ओर देखने लगा।

कोठी के अन्दर से बक्सों के खुलने और बन्द होने का शब्द लगातार आ रहा था। कभी उसकी माता की चिल्लाहट उसके कानों में पहुँचती और कभी पिता की झुँझलाहट-भरी आवाज़ वातावरण में फैल जाती—यह कि आज वे यात्रा की तैयारी कर रहे हैं, सड़क पर चलने वाले राहगीरों से छिपना भी सम्भव न था; किन्तु अभी तक रमेश को इस बात की सूचना उसके माता-पिता ने नहीं दी थी। ऐसी परिस्थिति में उसे क्या करना चाहिए, रमेश की समझ में नहीं आता था। अभी कुछ काल के लिए तो उसका निश्चय अपने माता-पिता के साथ लाहौर जाने का ही था; पर यदि वे उससे बिना बात किये ही चल दिये तो? क्या वह स्वयं उनसे बातचीत छेड़े? उस दिन के झगड़े के कारण वह किस मुँह से जा सकता था। खड़ा-खड़ा वह यही सोच रहा था।

इसके कुछ ही समय बाद कोठी के भीतर का शोर ज़रा कम हुआ और उसके साथ ही उसके पिता बाहर निकले और सीधे रमेश के पास पहुँचे। ज़रा तीखे स्वर में बोले—'हम कल पहले गेट से जा रहे हैं।'

'पहले गेट से?'

'हाँ, देहरादून में कुछ काम है।'

'फिर मुझे क्या आज्ञा है?

'यदि वकालत करनी हो तो तुम भी चलो।'

'और यदि न करनी हो ?'

'तो फिर अपना रास्ता देखो।'

'रास्ता देखूँ ?'—रमेश ने आश्चर्य से पिता की ओर देखा।

'हाँ, मेरा यही निश्चय है। अवज्ञा करने वाले पुत्र से मेरी नहीं निभ सकती।' यह कहकर वकील ने कठोर दृष्टि से कुछ ही दूर बैठी तारा की ओर देखा। 'तुमको किस बात की चिन्ता है! पढ़े-लिखे हो। तुम्हारा साथी भी पढ़ा लिखा है।' अन्तिम शब्द व्यंग्य के विष से बुझे हुए थे।

रमेश का हृदय क्रोध और पीड़ा से काँप उठा; किन्तु उसके चेहरे पर के भाव ज्यों-के-त्यों बने रहे। शान्त स्वर में बोला—'जो आज्ञा।'

पिता उसी क्षण कोठी के अन्दर लौट गया।

'अब ?'—उसने पत्नी की ओर देख कर पूछा।

तारा उठकर पति के निकट आ गई और बोली—'चलो, जरा घूम आएँ।'

'चलो।'

दोनों धीरे-धीरे पग रखते हुए कोठी से बाहर निकल गये। कुलड़ी को पार करते हुए कैमल्स बैक सड़क पर जा पहुँचे। इस नई उलझन की, जो उसके पिता ने खड़ी कर दी थी, रमेश को आशा न थी। यह तो वह जानता था कि कुछ एक महीनों के बाद उसे माता-पिता से विदा लेनी होगी; किन्तु बात इतनी जल्दी बिगड़ जायगी, यह उसने न सोचा था। इसलिए अब अति शीघ्र उसे अपना पथ निश्चित करना होगा। अपने मामा के घर वह अब अधिक टिकना नहीं चाहता था। कुछ दूर जाने पर तारा ने पूछा—'क्या सोच रहे हो ?'

'क्या तुम नहीं जानतीं ?'

जानती हूँ। तुम मेरी चिन्ता न करो। दो-चार मास मैं अपने पिता के घर रह लूँगी, तब तक हवा का रुख तुम्हें मालूम हो ही जायगा, और यदि तब तक तुम कहीं पहुँच न पाए, तो मैं उड़ती हुई तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगी। तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मैं तुम्हारी राह का काँटा नहीं बनूँगी, बल्कि तुम्हारी राह साफ करती चलूँगी।'

'बहुत अच्छा। किन्तु मुझे क्या करना होगा, यह भी तो निश्चय नहीं हो पाया।'

'तुम्हें लड़ना होगा, और क्या ?'

'लड़ना होगा ? किसके साथ ?'

'संसार के साथ। इसलिए यह निश्चित है कि तुम्हें लाहौर छोड़ना होगा। पंजाब से दूर किसी जन-समूह में जाना होगा, जहाँ तुम्हारा महान बल सही मानों में अपना अस्तित्व प्रकट कर सके।'

'अर्थात् ?'

'तुम्हें बंबई या कलकत्ता-जैसा बड़ा नगर अपने कार्यक्षेत्र के लिए चुनना होगा।'

'कलकत्ता या बंबई—इनमें से कौन सा ठीक रहेगा ? बंबई में तो मैं किसी को जानता नहीं; किन्तु कलकत्ते में मेरे एक मित्र रहते हैं, जो सुख-दुख में शायद काम आ सकें। इसलिए कलकत्ता ही ठीक रहेगा।'

इतने में आकाश मेघाच्छादित हो गया और ज़ोर की वर्षा होने लगी। उनसे कुछ ही फासले पर म्युनिसिपल कमेटी द्वारा निर्मित एक हवाई छतरी थी। दोनों भागकर उसके नीचे पहुँचे। सीमेंट की बनी

एक बेंच पर वे बैठ गए। जल-कणों की बनी पानी की दीवार को चीरते हुए उनके नेत्र दूर—बहुत दूर—तक फैली हुई पर्वत-श्रेणियों पर जा लगे। यद्यपि जल-कण अपने प्रबल वेग से उनपर आक्रमण कर रहे थे; पर वे अचल खड़े वरुणदेव के इस बल-प्रदर्शन पर मानो मुसकरा रहे थे? क्या मनुष्य में पर्वतों जैसी अचलता नही आ सकती? क्या विपत्तियों की वर्षा होने पर मनुष्य इनकी भाँति नहीं मुसकरा सकता? रमेश बैठा-बैठा यही सोचने लगा।

एकाएक रमेश की दृष्टि पर्वत-श्रेणियों से हटकर तारा के चेहरे पर जा लगी। 'तुम क्या सोच रही हो तारा?'

'वही, जो तुम। इन पर्वतों से यह प्रार्थना कर रही हूँ कि वे अपनी अचलता का एक अंश हमें भी प्रदान कर दें।'

'सच?' रमेश ने आश्चर्य से तारा की ओर देखा—'तो क्या उनका हृदय पसीजा है?'

'यह अपने हृदय से पूछो; समझे?'

'खूब!'

इसके अनन्तर दोनों कुछ देर चुपचाप वहाँ बैठे रहे। शनैः शनैः वर्षा का वेग कम होने लगा। वे दोनों उठे और धीरे-धीरे घर की ओर चल दिये।

———

# छठा परिच्छेद

खाना खाकर तारा तो दस ही मिनट में सो गई; किन्तु रमेश की आँखों में नींद का नाम था। वह चारपाई पर पड़ा-पड़ा अपने जीवन का सिंहावलोकन करने लगा, अपने हृदय को टटोलने लगा। क्या, जो कुछ वह करने जा रहा था, वह सचमुच ठीक था? उसके पिता के अनुसार वकालत का पेशा बहुत बढ़िया व्यवसाय था। संसार के बड़े-से-बड़े मनुष्य, विद्वान-से-विद्वान राजनीतिज्ञ, चतुर-से-चतुर नेता इसी पेशे से निकलते हैं। जिसने न्याय नहीं पढ़ा, नहीं समझा, वह मनुष्य सांसारिक दृष्टिकोण से सदा अधूरा ही रहेगा, रहता है। मनुष्य के मस्तिष्क के विकास के लिए न्याय से श्रेष्ठतर विद्या न है और न हो सकती है। न्याय वह विद्या है, जो मनुष्य के गुण को चार चाँद लगा देती है। अपने पिता के बार-बार कहे हुए ये शब्द एकाएक उसके मस्तिष्क में कौंध गये। रमेश ने सदा इन शब्दों को अर्ध सत्य के रूप में देखा था और उन्हें गम्भीर रूप प्रदान करने से पहले ही वह उन्हें उपहास का जामा पहनाकर उड़ा दिया करता था। पर क्या उसके पिता बिलकुल भूल कर रहे थे? क्या न्याय-व्यापार सचमुच इतना घृणित था कि उसकी आत्मा उसके प्रति विद्रोह कर उठी थी?

यह ठीक है कि आरम्भ में वकील को काम चलाने के लिए झूठ का आश्रय लेना पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि इस पेशेवाला पूर्ण रूप से ईमानदार नहीं रह सकता। उसे जजों, मैजिस्ट्रेटों आदि की

खुशामद भी करनी पड़ती है। किन्तु संसार में ऐसा कौन-सा पेशा है, जहाँ लगभग ऐसी ही बातें नहीं करनी पड़तीं। फिर उसने क्यों इसी बात को लेकर घर में एक बवंडर-सा खड़ा कर दिया? यह कौन से संस्कारों का फल था? इस जन्म में तो न्याय ने उसके साथ इतना अन्याय नहीं किया था कि वह उसकी घृणा का कारण बन जाय। हो सकता है, अनन्त पूर्व जन्मों में से किसी जन्म में न्याय-व्यापार के कारण उसने कष्ट सहे हों, उसकी आत्मा कलुषित हुई हो। पर यह निर्णय कौन करे? हो सकता है कि ऐसी कोई भी बात न हो। किन्तु होगी क्यों नहीं? यदि ऐसा न होता, तो न्याय-व्यापार का नाम सुनते ही उसका हृदय न काँप उठता। न्याय-व्यापार! पूर्वजन्म! यह जन्म! उसकी कल्पना उसे इधर-उधर लेकर उड़ने लगी! मन उद्विग्न हो उठा। स्पष्ट रूप से सोचना असम्भव होगया। कान लाल हो गये। पास की चारपाई पर तारा सो रही थी, उसकी बेचैनी से बेखबर। उसके नेत्र मुँदे हुए थे। चेहरे पर शान्ति खेल रही थी। उसे जगाना उचित न होगा। वह चुपके से उठा। पाँव की अँगुलियों के बल चलता हुआ कमरे से बाहर हो गया।

कोठी में लॉन की परली तरफ एक बड़ा-सा पत्थर पड़ा था, वह उस पर जा बैठा। आकाश में चाँद खिल रहा था। तारे झिल-मिला रहे थे। इधर-उधर झिल्ली का झंकार हो रहा था। उसके नेत्र चाँद पर जा लगे और वह एक साधक की भाँति चाँद की मूक भाषा को समझने का प्रयत्न करने लगा। क्या उसके मन में उठने-वाले प्रश्नों का उत्तर चाँद दे सकता था? क्या उसके जन्म-जन्मान्तरों की कहानी आकाश में झिलमिलाते तारों को मालूम थी? उसके भिन्न-भिन्न जीवनों

के खेल इन नक्षत्रों ने तो अवश्य देखे होंगे। क्या वे उसे बता न सकते थे कि वह क्या था? उसका विकास कैसे और किन राहों से गुज़र कर हुआ था और आगे उसका क्या होगा? यदि कहीं यह रहस्य सुलझ जाय, तो जीवन की कितनी ही कठिनाइयाँ दूर हो जायँ, दुःखों के पहाड़ राई के कण बन जायँ।

इतने में सड़क पर एकाएक गाड़ी चलने और मनुष्यों के बोलने का शब्द होने लगा, जिससे उसका ध्यान टूट गया। उसने ऊपर दृष्टि उठाई। चाँद के प्रकाश में देखना कुछ कठिन न था। तीन रिक्शा तेज़ी से सड़क पर जा रहे थे। उनमें बैठी हुई सवारियाँ—स्त्री पुरुष—कुछ नींद के कारण और अधिकतर मद के कारण एक दूसरे पर लुढ़की पड़ती थीं। उनकी कोठी के निकट ही एक दूसरी कोठी थी। उस कोठी के निवासी स्टैंडर्ड से डांस करके लौट रहे थे। यद्यपि वे भारत के ही रहने वाले थे, किन्तु रंग ढंग सभी पश्चिमी थे। उनके क्या, मसूरी में घूमने आये अधिकतर लोग उसी सभ्यता के मदमाते थे। उन्होंने अपने पुरातन रीतिरिवाज क्यों छोड़ दिये, पश्चिमी 'आनन्द' के साधन क्यों अपना लिये? आखिर इस आमोद-प्रमोद की भित्ति उत्तेजना ही तो थी और उत्तेजना की राह कितनी भयानक, कितनी नीचे गिराने वाली है, यह कौन इन्हें समझाये? इसी राह के सहारे भारतीय नारी सिगरेट ही नहीं मदिरा का रसास्वादन भी करने लगी है। विलायती नाच—जिसमें पर-पुरुष का सम्पर्क आवश्यक है—में भी भाग लेने लगी है। इस पतन का अन्त कहाँ होगा? कैसे होगा? अपनी समस्या तो उसे भूल गई और उसके सामने यह नई समस्या आ खड़ी हुई।

वह उठकर टहलने लगा और सोचने लगा। इतने में उसे कुछ

शीत का अनुभव हुआ और तब उसे मालूम हुआ कि वह बिना कोई गर्म कपड़ा ओढ़े बाहर निकल आया था । उसने फिर कोठी की ओर मुख किया । ठीक उसी समय एक मूर्त्ति-सी कोठी से निकल कर उसकी ओर बढ़ने लगी । ज़रा निकट आने पर उसने देखा, वह तारा थी । उसके चेहरे पर घबराहट थी, नेत्र बेचैनी से किसी को ढूँढ रहे थे । सहसा उसकी दृष्टि रमेश पर पड़ गई । उसने सन्तोष की एक साँस ली और बोली—'तुम भी विचित्र मनुष्य हो ! इतनी रात गये यहाँ क्या कर रहे हो ? मैं तो डर ही गई थी ।'

'डरने की क्या बात थी ? मैं तो अपनी समस्या सुलझाने आया था; किन्तु वह तो क्या सुलझती एक और ही समस्या गले पड़ गई !'

'क्या ?'

'भारतीय नारी की ।'

'अर्थात् ?

'यह कि जो रूप वह अपनाती चली जा रही है, क्या वह यथार्थ है ? उसमें देश की कितनी भलाई है कितनी बुराई है, यही खड़ा-खड़ा सोच रहा था ।'

तारा खिलखिलाकर हँसी—'हम आपकी कृतज्ञ हैं, भारतीय नारी को हम पर ही छोड़िए । उनकी समस्या हम सुलझा लेंगी और तुम्हारी समस्या सुलझेगी अरुणोदय से । चलो, अब सोएँ ।'

'चलो ।'

पत्नी का हाथ पकड़े धीरे-धीरे रमेश कोठी की ओर बढ़ने लगा ।

---

# सातवाँ परिच्छेद

सोमेश की कोठी के बरामदे में उस दिन उसकी बहन और वकील महोदय की आवाज़ नहीं गूँज रही थी। वहाँ पर बैठे थे रमेश और तारा। रमेश के माता-पिता कल जा चुके थे। उनका कुछ सामान बरामदे के एक कोने में पड़ा था। इतने में सोमेश और मीना वहाँ आ पहुँचे। वे भी वहीं पड़ी हुई कुरसियों पर बैठ गये।

'तुम भी न माने रमेश!' सोमेश ने कहा—'आखिर जाने की इतनी जल्दी क्या पड़ी थी?'

'मामाजी, अब जाना ही चाहिए। यूँ आप की कृपा-कोर बनी रहे, तो मैंने सब कुछ पा लिया।'

'इन बातों को छोड़ो और यह बताओ कि तुमने कार्यक्रम क्या निश्चित किया है?'

'कार्यक्रम!' रमेश ने सन्दिग्ध भाव से अपने मामा की ओर देखा—'उसे गाड़ी में बैठ कर निश्चित करूँगा। भागते हुए बादलों और घने जंगलों से स्फूर्ति का दान माँगूँगा। अभी तो यही समझिए कि अपनी जन्मभूमि छोड़ रहा हूँ।'

'पर भैया, जा कहाँ रहे हो?'—मीनाक्षी ने किंचित् उत्सुकता से पूछा।

'पहले तारा को छोड़ने शिमला और फिर कलकत्ता।'

'कलकत्ता? भैया, वहाँ चिड़ियाघर और बोटेनिकल गार्डन देखना न भूलना। मैं तो दो-दो बार देख कर आई थी।'

अपने काम-काज के सिलसिले में सोमेश को अनेक बार दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास आदि जाना पड़ता था। इन व्यापारिक यात्राओं में वह अपनी मातृ-विहीन बेटी मीनाक्षी को भी साथ ले जाया करता था। इसलिए वह इन बड़े-बड़े शहरों से भली भाँति परिचित थी।

'हाँ, उन्हें अवश्य देखूँगा मीना !'

'बोटेनिकल गार्डन में हज़ारों वृक्षों का जन्मदाता वटवृक्ष एक अद्भुत चीज़ है। और भैया, चिड़ियाघर का वनमानुष तो सिगरेट भी पी लेता है। उसे अवश्य देखकर आना।'

'बहुत अच्छा, मीना ! कुछ और ?'—रमेश ने मुसकरा कर पूछा।

'दक्षिणेश्वर का मन्दिर मुझे बहुत भाया था भैया; और हुगली के पार स्वामी रामकृष्ण परमहंस का बेलूर-मठ भी देखने जाना, किन्तु रात्रि के समय। और क्या क्या बताऊँ; कलकत्ता कलकत्ता ही है।'

मीना का कलकत्ता कितना मधुर, कितना हृदयहारी, कितना आनन्ददायक था ! क्या सब का कलकत्ता ऐसा हो सकता है ? उसका कलकत्ता न जाने कैसा निकलेगा ! क्या जाने वहाँ पर उसकी सारी आकांक्षाएँ भस्मीभूत हो जायँ ! तारा के लाख प्रोत्साहन भी आत्मविश्वास को ठेस लगाने वाले भय के बीज को निर्मूल न कर सके ! उसने मीना के प्रश्नों का कुछ उत्तर न दिया और गहरे सोच में डूब गया।

'क्या सोच रहे हो रमेश भैया ?'—मीना ने फिर पूछा।

'सोच रहा हूँ कि मेरा कलकत्ता कैसा रहेगा।'

'तुम घबराते क्यों हो ?' सोमेश कहने लगा—'ईश्वर पर भरोसा

रखो और अपना कर्तव्य पालन करो।'

'सो तो करना ही होगा।'

काफी देर से आकाश में बादल उमड़-घुमड़ रहे थे। इसी बीच में वे बहुत घने हो गये और एकाएक ज़ोर की वर्षा होने लगी।

'फिर पानी आ गया,' तारा ने ज़रा चिन्तित स्वर में कहा—'रास्ते में तंग करेगा।'

'करेगा तो करे। पहाड़ों पर आकर मेह से डरने से तो नहीं चलेगा।'

'तो आज रुक ही न जाओ।'—सोमेश ने कहा।

'नहीं मामाजी, आज जाना ही होगा।'

'अच्छा तो तुम्हारे खाने पीने का बन्दोबस्त करूँ।'—यह कहता हुआ सोमेश भीतर चला गया।

वे तीनों ज्यों-के-त्यों बैठे रहे।

कोई दो घंटे के अनन्तर भोजन से निपट कर 'क्रिंकेग' पर जाकर मोटर पकड़ने के लिए जब रमेश और तारा रिक्शा में बैठे, तो वर्षा का वेग कम नहीं हुआ था। रिक्शा-कुली उस मूसलाधार वर्षा में रिक्शा को लेकर तेज़ी से आगे बढ़ने लगे। तारा की कौन जाने, किन्तु रमेश का हृदय उड़ उड़-सा जाता था। मसूरी यद्यपि उसका निवास-स्थान न था, किन्तु लगभग तीन मास तक वहाँ रहकर उसे इस पहाड़ी प्रदेश से विशेष मोह हो गया था। सबसे अधिक दुःख हो रहा था उसे अपने मामा को छोड़ते हुए जिनकी अचूक मन्त्रणा उसको सदा स्फूर्ति देती रही थी। कौन जाने वह अपने इस वास्तविक आत्मीय से फिर कब मिले। माता-पिता ने अपने घर से तो निकाला

दी और साथ ही ऐसे वातावरण की सृष्टि भी की कि उसे अपने मामा से दूर हट जाना पड़ा। इन्हीं विचारों की उधेड़बुन में 'किंकेग' आ गया। उन दोनों की सीटें पहले से ही रिज़र्व थीं। उनका सामान सोमेश के नौकर-चाकर रखवा चुके थे। वह चुपके से तारा का हाथ पकड़े हुए मोटर में जा बैठा।

कुछ ही देर बाद बल खाती हुई सड़क पर जल-प्रपातों के जल को चीरती हुई मोटर देहरादून की ओर बढ़ने लगी। रमेश कुछ देर दाएँ-बाएँ देखता रहा, फिर उसने आँखें मूँद लीं और अपनी सीट की पीठ पर सिर फेंक दिया। तारा ने करुण-कोमल दृष्टि से पति की ओर देखा। रमेश के हृदय में क्या उथल-पुथल मच रही है, तारा खूब जानती थी; किन्तु वह प्रश्नों का सिलसिला छेड़ कर उसे अधिक तंग नहीं करना चाहती थी। इसलिए वह जान-बूझकर चुप्पी साधे हुए थी।

अभी वे आधा ही रास्ता तय कर पाये थे कि वर्षा सहसा बन्द हो गई। बादलों को छिन्न-भिन्न करता हुआ सूर्य निकल आया। वातावरण मानो एकाएक खिल उठा। तारा ने कोमलता से पति को झकझोरा और धीरे से बोली—'अब तो आँखें खोलो। वह देखो, काले बादलों को चीर कर सूर्य भगवान निकल आये हैं।'

रमेश ने हड़बड़ा कर आँखें खोलीं—'सच?'

'स्वयं देख लो। देखो, संसार को उन्होंने सोने से ढँक दिया है। आओ, हम भी उनसे प्रार्थना करें कि वे हमारे पथ को आलोकित करें।'

रमेश ने मन-ही-मन सूर्य भगवान को नमस्कार किया। उसके हृदय

की उदासी अब बहुत-कुछ दूर हो चुकी थी। उसने तारा का हाथ अपने हाथ में ले लिया। मोटर उनको लेकर आगे बढ़ती चली गई।

देहरादून में मोटर से उतर कर जब वे स्टेशन की ओर चले तो रमेश का मन पूर्णतया शान्त नहीं हो पाया था। उसने तारा से पूछा—'क्या तुम्हारा अभी से मेरे साथ कलकत्ता जाना ठीक न रहेगा?'

'ठीक की बात मैं नहीं जानती,' तारा ने अपने पति को नेत्रों द्वारा तौलते हुए जवाब दिया—'किन्तु मेरे लिए ऐसा करना अतीव सुखकर होगा, यह तो निश्चित है।'

'तो फिर चलो।'—रमेश के चेहरे पर लाली दौड़ गई।

'पर जा नहीं सकती।'

रमेश का हृदय फिर बुझ गया। निराश स्वर में पूछने लगा—'क्यों?'

'इसलिए कि मैं तुम्हारे आत्म-विश्वास की हत्या करने के पक्ष में नहीं हूँ।'

'क्या मतलब?' रमेश ज़रा उत्तेजित स्वर में मस्तक पर त्योरी चढ़ाकर बोला—तुम मुझे क्या समझती हो?'

'वही, जो-कुछ तुम हो,' तारा ने मुसकरा कर जवाब दिया—'मेरे जीवन-सर्वस्व! इसलिए मेरे स्वार्थ का पथ न पकड़ो, बल्कि हम दोनों का उद्धार जिस तरह से हो सकता है, उसे अपनाओ। जो निर्णय हम कर चुके हैं, समझ लो, वह अकाट्य है।'

रमेश ने आधा क्षण कुछ उत्तर न दिया। उसके मस्तक पर की त्योरी धीरे-धीरे लुप्त हो गई। उसके होठों पर मुसकान की एक छाया सी खेल उठी। बोला—'बहुत अच्छा।'

# आठवाँ परिच्छेद

तारा को शिमला छोड़ कर रमेश ने सीधी कलकत्ता की गाड़ी पकड़ी। कलकत्ता जाकर उसका कार्यक्रम क्या होगा, तारा और वह लाख यत्न करने पर भी निश्चित न कर पाये। कलकत्ता की लंबी यात्रा में वह इसी गुत्थी को सुलझाने में प्रयत्नशील रहा, किन्तु व्यर्थ। आखिर परास्त होकर उसने सोचना छोड़ दिया और सेकेंड क्लास की अपनी बर्थ पर आँखें मूँदकर पड़ रहा। अब उसकी यात्रा समाप्त ही होने वाली थी। कलकत्ता में जो-कुछ करने को मिलेगा उसी को अपना कार्यक्रम वह बना लेगा। बहुत देर तक वह इसी तरह पड़ा रहा। गाड़ी क्षण-प्रतिक्षण मीलों का अन्तर डालती हुई उसे घर से दूर स्वर्णभूमि कलकत्ता की ओर लिये जा रही थी। स्वर्णभूमि! हाँ, लाखों के लिए कलकत्ता स्वर्णभूमि ही तो था। उन लाखों की पंक्ति में बैठने के लिए वह भी जा रहा था। और कौन जाने उसी गाड़ी में जाने वालों में से कई महत्त्वाकांक्षियों का लक्ष्य भी वही हो।

बहुत देर पड़े रहने के बाद जब वह उठा, तो गाड़ी वंगभूमि को चीरती हुई आगे बढ़ी जा रही थी। उसने खिड़की से बाहर की ओर झाँका। कुछ ही अन्तर पर गाड़ी के दोनों ओर बड़े-बड़े तालाब दृष्टिगोचर होने लगे, जिनमें रंग-बिरंगे कमल के फूल और पत्तों के फर्श हृदय को आकर्षित करते थे। दूर-दूर तक फैली हुई हरियाली देखकर उसे ऐसा लगा, जैसे 'वंकिम' ने इस पुण्य-भूमि को शस्य-श्यामला

बिलकुल ठीक ही कहा हो। इन्हीं हृदय-हारी दृश्यों को दिखाती हुई गाड़ी हावड़ा स्टेशन पर जा पहुँची। अपने आने की सूचना अपने मित्र को उसने जान-बूझ कर नहीं दी थी, इसलिए अन्य मुसाफ़िरों की भाँति वह किसी से भी मिलने के लिए उत्सुक न था। इतने बड़े शहर के इस मामूली-से बने प्लैटफ़ार्म पर वह भरे हुए मन से उतर पड़ा और एक कुली को अपना सामान नीचे उतारने का आदेश दिया। दो सूटकेस और एक बिस्तर--यह था उसका सामान और जेब में पांच सौ रुपये—यह थी उसकी पूँजी। कुली ने सामान बाहर निकालते हुए हिन्दी में पूछा—'कहाँ जाना होगा, बाबू?'

'तुम कहाँ तक जा सकते हो?' उसने कुली को सिर से पाँव तक देखा। बंगाल की राजधानी से सम्बन्धित इस स्टेशन पर हिन्दी-भाषा-भाषी कुली की उसे आशा न थी। क्या उस कुली ने यह एक वाक्य उत्तर-भारतीय मुसाफिरों के लिए याद तो नहीं कर रखा था? यही जानने के लिए उसने यह प्रश्न किया था।

'जहाँ आप आज्ञा दें, हम वहीं तक जा सकते हैं।' कुली ने जवाब दिया।

'अरे, तुम तो हिन्दी बोलते हो!'

'हाँ बाबू, यहाँ काम करने वाले अधिकतर बिहारी हैं।'

'तभी! मुझे मैजिस्टक होटल जाना है। टैक्सी स्टैण्ड तक सामान ले चलो।'

कुली ने सामान उठा लिया और रमेश के पीछे-पीछे चल पड़ा। टैक्सी-स्टैण्ड प्लैटफार्म के बाहर ही था। उसने वहाँ से एक टैक्सी किराये पर ली जिसने दस ही मिनट में उसे मैजेस्टिक होटल पहुँचा

दिया। यद्यपि दूसरे महायुद्ध को आरम्भ हुए अभी पूरे दो साल भी न हुए थे; किन्तु जीवन की आवश्यक वस्तुओं के दाम और होटल के किराये काफी बढ़ चुके थे। बड़ी कठिनता से दस रुपये रोज़ में एक छोटे से कमरे और खाने का प्रबन्ध हो सका।

झटपट नहा धो कर उसने चाय की एक प्याली पी और अपने मित्र नवीनचन्द्र चटर्जी की तलाश में चल पड़ा। नवीन यों तो बंगाली था किन्तु उसकी सारी शिक्षा-दीक्षा लाहौर में ही हुई थी। उसके पिता इनकम-टैक्स विभाग में एक उच्च अफसर थे और बहुत दिनों तक लाहौर में लगे रहे। उसके पिता तो अब भी लाहौर में ही थे; पर नवीन को कलकत्ता विश्वविद्यालय में एक लेक्चररशिप मिल गई थी। इसलिए न चाहते हुए भी उसे पंजाब छोड़कर बंगाल आना पड़ा। नवीन के पिता ने उसे बताया था कि बालीगंज में दो कमरों के एक छोटे-से फ्लैट में वह अपनी पत्नी और एक एकवर्षीया नन्हीं लड़की को लेकर रह रहा है। नवीन के पिता द्वारा लिखा हुआ पता रमेश ने जेब से निकाल कर देखा और ट्राम-स्टैण्ड की ओर चल दिया। राह जाते हुए एक बंगाली सज्जन से उसने ट्राम के विषय में पूछ-ताछ करने की कोशिश की; किन्तु वह बिना उसकी बात का जवाब दिये, बेपरवाही से उसे छोड़कर, आगे बढ़ गया। इसके अनन्तर किसी से कुछ पूछने का उसे साहस न हुआ। होटल के छोकरे से प्राप्त किया हुआ टूटा-फूटा ज्ञान जो उसे था, उसी का सहारा लेना उसने उचित समझा।

कुछ ही मिनटों में वह धर्मतल्ला स्ट्रीट में पहुँच गया। जहाँ से ट्राम-स्टैण्ड साफ दीख रहा था। सड़क की दाहिनी ओर कुछ पेशावरी फल बेचने वालों की दुकानें थी। उन्हें देखकर रमेश प्रसन्न हुआ,

क्योंकि उसे पूर्ण विश्वास था कि उनमें से किसी एक द्वारा बालीगंज पहुँचने का ठीक रास्ता उसे अवश्य मालूम हो जायगा। एक दुकान पर मोटी-मोटी आँखों, तीखी नाक, प्रशस्त ललाट वाला एक युवक बैठा था। रमेश उसी की ओर बढ़ा। उसने मुसकरा कर रमेश का स्वागत किया और पंजाबी में पूछा—'क्या चाहिए ?'

'चाहिए तो इस समय कुछ भी नहीं, किन्तु तुम्हें कुछ कष्ट देना चाहता हूँ।'—रमेश ने कहा।

'कहिए।'

रमेश ने उसे बताया कि वह क्या चाहता था। उस पठान युवक ने बड़े आदर से और अच्छी तरह उसे समझा दिया कि कौन-सी ट्राम उसे बालीगंज ले जायगी। उसको धन्यवाद देकर रमेश ट्राम-स्टैण्ड पर आ पहुँचा।

क्योंकि नवीन के पिता ने मकान का नम्बर भी लिख दिया था, इसलिए बालीगंज में पहुँच कर नवीन का फ्लैट ढूँढने में रमेश को कुछ भी कठिनाई न हुई। बड़ी उत्सुकता से जा कर उसने नवीन का द्वार खटखटाया। पर उसे निराश होना पड़ा। नवीन और उसकी पत्नी दोनों घर पर न थे। केवल एक बंगाली नौकर रसोई बनाने में व्यस्त था। बहुत सिर-पच्ची करने पर उससे केवल इतना पता चला कि नवीन शायद पत्नी-सहित घूमने गया हुआ था। दिया-बत्ती जलने तक उनके लौटने की सम्भावना थी। रमेश ने अपने कार्ड पर होटल का पता लिखकर नौकर को दे दिया और उसे नवीन को दिखा देने का आदेश देकर नीचे उतर आया।

अब ! रमेश ने सुन रखा था कि बालीगंज के निकट ही कलकत्ता

की प्रसिद्ध ढाकुरिया लेक है। उसे ही देखने का उसने निश्चय किया। वह धीरे-धीरे उधर चल दिया। जब वह लेक पर पहुँचा, तो सूर्य अस्त हो रहा था। स्त्री, पुरुष और बालक झुण्ड-के-झुण्ड उत्साह और आनन्द से भरे लेक के चारों ओर कुछ बैठे गप्पें लड़ा रहे थे, कुछ टहल रहे थे, कुछ आईस-क्रीम और 'मूड़ी भाजा' खा रहे थे। रमेश ने अपने चारों ओर देखा। इतने बड़े जन-समूह में एक भी परिचित मुख उसे दृष्टिगोचर न हुआ। कोई भी परिचित स्वर उसे सुनाई न दिया। उसे ऐसा लगा, जैसे नितान्त अकेला वह किसी निर्जन वन में खड़ा हो। उसके रोम-रोम में उदासी छा गई। निकट ही लेक के किनारे एक बेंच पड़ी थी। वह उस पर जा बैठा। डूबते हुए सूर्य की लालिमा ने लेक के जल को रक्त-रंजित कर दिया था। वह उसी की ओर देखने लगा। इतने में कोई डेढ़-डेढ़ गज लम्बे साँपों का अधछिपा-सा एक जोड़ा जल में क्रीड़ा करता हुआ उसके आगे से निकल गया। उनके मटमैले, किन्तु चमकीले रंग को सूर्य की लालिमा तथा जल ने और भी चमका दिया था। हलकी-हलकी लहरें बनाते पानी को चीरते आगे बढ़ते हुए वे ऐसे दीख रहे थे मानो हीरक की दो लड़ियाँ किसी देव के वरदान से जीवन पा उठी हों। इन हिंसक जीवों को भी ईश्वर इतना सौन्दर्य दे देता है, वहाँ बैठा-बैठा रमेश यही सोचने लगा और जब तक वे आँखों से ओझल न हो गये, उसकी दृष्टि उन्हीं पर रही।

इसी बीच में सन्ध्या हो चली थी। वह उठा। यात्रा की थकान के कारण उसने होटल वापस जाना ही ठीक समझा।

———

# नवाँ परिच्छेद

रमेश ने अभी आँखें खोली थीं, किन्तु बिस्तर नहीं छोड़ा था कि उसके कानों में नवीन की आवाज़ पहुँची। सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ वह कहता चला आ रहा था—अरे तुम भी खूब आदमी हो, घर को छोड़कर होटल में आ पड़े हो। यदि तुम्हें मेरा अपमान ही करना था, तो घर पर आकर दस गालियाँ दे ली होतीं।' इतने में वह अपनी धोती सँभालता हुआ अन्दर घुस आया और रमेश की चारपाई पर बैठता हुआ कहता चला गया—'कुछ लाज, कुछ शर्म तो तुम्हें आनी चाहिए और देखो, अभी तक सोये पड़े हो, जल्दी उठो।'

रमेश खिलखिलाकर हँसा और बोला—'तुम तो ग्रामोफोन के रिकार्ड ही रहे, मुझे भी तो कुछ कहने दो।'

'तुझे ? कहने को बहुत समय पड़ा है, जल्दी सामान बाँधो, टैक्सी नीचे खड़ी है। मगर तुम क्या करोगे। ब्वाय ! अरे होटल का नौकर यहाँ कोई नहीं ? क्या सब मर गये ? ठीक भी तो है, तुम्हारे जैसे पोस्ती की कौन परवाह करता है !'

'किन्तु—'रमेश ने कहना चाहा।

'किन्तु-विन्तु कुछ नहीं। किस पगले से पाला पड़ गया ! उठो बाबा, उठो।' यह कहता हुआ नवीन चारपाई से उठा और इधर-उधर कमरे में बिखरी हुई चीज़ों को समेटने लगा।

रमेश ने एक अँगड़ाई ली और स्लीपिंग-सूट के बटन ठीक करता हुआ उठ खड़ा हुआ—'भाई नवीन, मेरी बात तो सुनो।'

'सुन लूँगा। इतना अपमान! घर पर पहुँच लो, तब तुमसे बात करूँगा।'

'रमेश ने एक दीर्घ निश्वास लिया और बोला—'एवमस्तु! पर किसी ने क्या सच कहा है।'

'क्या कहा है?'

'अगर कुछ पेचीदगी, या बाँकपन का शौक है, तो बात बंगाली की सुन, बंगालिनों के बाल देख। आज तुमने इस बात को पूर्णतया सिद्ध कर दिया। तुम्हारी ज़बान है या राजर्स की कैंची?'

अबकी बार नवीन खिलखिला कर हँसा और अपने काले नेत्रों द्वारा रमेश को देखते हुए बोला—'हो तुम भी बड़े बदमाश।'

रमेश के लाख ना-ना करते रहने पर भी कोई आध घण्टे में ही नवीन ने रमेश का सामान टैक्सी के पीछे बँधवा दिया और उसे साथ लेकर टैक्सी में जा बैठा। उनके बैठते ही गाड़ी चल दी। धर्मतल्ला स्ट्रीट को छोड़ कर चौरंगी की चौड़ी सड़क पर पहुँची तो रमेश की दृष्टि दूर तक फैले हुए बड़े मैदान के साथ तैरने लगी। प्रातः के घुमक्कड़ मैदान को उतावली से अपने डगों द्वारा नाप रहे थे, मानो उनके जीवन का ध्येय ही यही हो। शायद एक डग इधर-उधर हो जाने से उनकी आकांक्षा में बाधा पड़ने का भय हो। मैदान के मध्य में विक्टोरिया-मेमोरियल ऐसे खड़ा था, जैसे संसार से बेखबर बर्फ से ढँका कोई तपस्वी हो।

'क्या सोच रहे हो?'—नवीन ने सहसा पूछा।

रमेश ने मैदान से हटकर नवीन को एक उड़ती हुई दृष्टि से देखा। उसकी दृष्टि नवीन के रेशमी पंजाबी कुरते को छूती हुई उसके उन्नत

ललाट पर खेलते हुए काले बालों पर जा लगी। वह धीरे से गम्भीर स्वर से बोला—'सोच रहा हूँ कि नवीन ऐसा सुहृद पाने का मुझे क्या अधिकार है ?'

नवीन अपनी आदत के अनुसार अब के हँसा नहीं। चिन्तित स्वर में बोला--'क्या तुम सचमुच यह सोच रहे ? झूठ न कहना।'

'क्यों ?'

'इसलिए'--नवीन रुक गया फिर आग्रह-भरे स्वर में बोला—'नहीं, पहले तुम मेरे प्रश्न का उत्तर दो।'

'सच पूछते हो ?'

'बिलकुल।'

'मैं यह सोच रहा था कि मैदान की उस हरियाली में दूध-से श्वेत विक्टोरिया-मेमोरियल को ला उपस्थित करना क्या उसके प्रति न्याय हुआ है ? क्या यह ऐसे नहीं लगता कि हिमाच्छादित हिमालय का एक टुकड़ा काट कर हमें भरमाने के लिए मैदान में फेंक दिया गया हो ?'

नवीन की सारी चिन्ता जाती रही। हर्षित स्वर में बोला—'ओ बाबा, तुम तो कविता करने लगे !'

'पर तुम बताओ, तुम क्या कहने जा रहे थे।

'तुम्हारे उस वाक्य ने मेरे मन में एक भय उत्पन्न कर दिया था।

'क्या ?'

'यही कि कहीं तुम इस एक वर्ष के भीतर ही ममत्व-दम्भ के शिकार तो नहीं हो गये ?

'यदि ऐसा होता तो उसमें बुराई क्या थी ?'

'यही कि फिर तुम दम्भ के दास हो जाते। ममत्व-दम्भ की अगली सीढ़ी है आत्म-दम्भ। उसे अपनाने से मनुष्य की जग हँसाई तो होती ही है, साथ ही वह क्षुद्रता का पथ भी पकड़ लेता है।' यह कहकर नवीन ज़ोर से हँसा—'पर अब तो इस विषय पर विवाद व्यर्थ है।'

इतने में नवीन का फ्लैट आ पहुँचा। नवीन की पत्नी प्रतिमा उनकी प्रतीक्षा में खिड़की में खड़ी उत्सुकता से उनकी राह देख रही थी। वह ढाके की एक काली साड़ी पहने थी, जो उसके गोरे रंग पर खिल-खिल पड़ती थी। रमेश को देख उसके ओंठों पर ही मुसकान नहीं खेल उठी, बल्कि उसके बड़े बड़े नेत्र भी मुसकरा उठे। दोनों हाथ जोड़ कर उसने रमेश को नमस्कार किया और मधुर स्वर में बोली—'आ गये भैया!

'हाँ, भाभी! नवीन की बात कब टल सकती है।'—उसने प्रतिमा को प्रतिनमस्कार करते हुए जवाब दिया।

'भैया, तुम्हें होटल में नहीं जाना चाहिए था।'

'यह मुझसे भूल हो गई, मानता हूँ।'

'और दीदी को साथ क्यों नहीं लाये? मैंने तो उन्हें देखा भी नहीं।'

नवीन का विवाह रमेश से एक वर्ष पहले हुआ था और हुआ भी लाहौर में ही था। इसलिए रमेश को प्रतिमा से दो-चार बार मिलने का अवसर प्राप्त हो चुका था। किन्तु रमेश के विवाह पर नवीन और प्रतिमा नहीं आ सके थे। विश्वविद्यालय में परीक्षाओं के कारण नवीन को छुट्टी नहीं मिल सकी थी। यही कारण था कि प्रतिमा और

नवीन ने तारा को नहीं देखा था।

इतने में नवीन भी, जो अभी तक टैक्सी वालों से निपट कर सामान आदि का प्रबन्ध कर रहा था, आ पहुँचा। 'अरे भाई, अभी ज्यों-के-त्यों खड़े हो। जाओ नहा-धो तो लो। मुझे तो यूनिवर्सिटी भी पहुँचना है। जाओ, जल्दी करो।'

लगभग ढकेल कर नवीन ने रमेश को गुसलखाने की ओर भेज दिया। इस दम्पती के स्निग्ध-स्नेह से प्रफुल्लित रमेश गुसलखाने में घुस गया।

---

# दसवाँ परिच्छेद

नवीन के बैठने वाले कमरे में रमेश नवीन की नन्ही लड़की को झूला झुला रहा था। लड़की के ओठों पर मुसकान खेल रही थी और उसका एक-एक अंग मानो प्रसन्नता से नृत्य कर रहा था। अपनी मूक भाषा में वह रमेश पर अपनी कृतज्ञता गद्गद होकर प्रकट कर रही थी। इतने में नवीन यूनिवर्सिटी से लौट आया--'यह क्या हो रहा है रमेश ?'

'नन्ही से जान-पहचान कर रहा हूँ।'

'अच्छा। प्रतिमा कहाँ है ?'

'रसोई घर में होगी। अतिथिदेव जो उनके घर आये हुए हैं।'

'तुम्हारे-जैसे अतिथि को कौन पूछता है ?'

'क्यों नहीं पूछता ?' प्रतिमा ने कमरे में घुसते हुए कहा 'चलो, खाना तैयार है, पहले उससे निबट लो।'

दोनों उठ कर चल पड़े।

'ज़रा नौकर को भेज देना।' प्रतिमा ने कहा—'आकर नन्ही को सँभाल लेगा।

बरामदे में एक मेज़ और उसके चारों ओर कुरसियाँ लगा कर उसे डाइनिंग रूम का रूप दे दिया गया था। उसी मेज़ पर भोजन परसा रखा था। नौकर को भेज कर नवीन और रमेश हाथ धोने लगे। इस बीच में प्रतिमा भी आ गई; किन्तु वह उनके साथ खाने नहीं बैठी। उसने कहा—'मैं तुम दोनों की देख-भाल करूँगी।'

चूँकि रमेश निरामिषभोजी था, इसलिए उस दिन दाल और तरकारियाँ बनी थीं और वह भी पंजाबी ढंग की।

'देख लो भाई मैंने तुम्हारे लिए पंजाबी खाना ही तैयार किया है।'

'इसके लिए बहुत कृतज्ञ हूँ, भाभी!' रमेश ने जवाब दिया—'किन्तु अब मुझे निरामिष बंगाली भोजन तो अपनाना ही होगा।'

'सो क्यों?'—नवीन ने आश्चर्य से पूछा।

'इसलिए कि मैं सदा के लिए कलकत्ता में रहने के निश्चय से यहाँ आया हूँ।'

'हमें न बनाओ।' नवीन ज़रा ज़ोर से बोला—'अपने पिता की वकालत की इतनी बड़ी धरोहर छोड़कर तुम को क्या पड़ी है यहाँ आने की।'

इसलिए कि वकालत का पेशा बहुत घृणित है।'

'बहुत खूब!' नवीन व्यंग्य से ओतप्रोत स्वर में बोला—'देशबन्धु चित्तरंजन दास ने जो काम आयु-भर किया, तुम उसे घृणित कहते हो?'

'अन्त में जाकर उन्होंने भी तो यह काम छोड़ ही दिया था।'

'वह और बात थी। खैर, तो क्या तुम्हारे मामा यहाँ अपनी ब्रांच खोलने जा रहे हैं और तुमको यह भार सौंपा गया है?'

'नहीं भाई, नहीं। मैं पिता और मामा के बल पर यहाँ नहीं आया हूँ।'

'फिर?'

'फिर यही कि कलकत्ता बहुत बड़ा है, बड़ा दयालु है और मेरा भाग्य मेरे साथ है। कौन जाने गिरता-पड़ता कहीं पहुँच ही जाऊँ।'

'किन्तु विचार क्या है? क्या व्यापार करने आये हो?'

'यही समझ लो।'

'पूँजी कितनी लाये हो साथ?'

'पाँच सौ रुपया नकद।'

'पाँच सौ!' नवीन खिलखिलाकर हँसा—'होश में तो हो। इस रुपये को लेकर किसी गाँव में साहूकारा करो, कलकत्ता और पाँच सौ!'

रमेश ने कुछ जवाब नहीं दिया। वह प्रतिमा द्वारा बनाये हुए सन्देश खाने में मग्न था। उसी काम में लगा रहा। नवीन भी चुप रहा और कुछ विस्मित, किंचित् चिन्तित, दृष्टि से अपने मित्र की ओर देखता रहा। इसके कुछ ही देर बाद उन्होंने भोजन समाप्त कर लिया।

जब वे खाकर बैठने वाले कमरे में पहुँचे, तो नवीन ने फिर बात छेड़ी—'रमेश, सच बताओ, बात क्या है? मुझसे क्यों छिपा रहे हो?'

इस बीच में उमड़-घुमड़ कर बादल आ गये थे और बूँदा-बाँदी भी आरम्भ हो गई थी। रमेश ने खिड़की से पड़ते हुए पानी की ओर

देखते हुए कहा—'न तुमसे कुछ छिपा रहा हूँ, न छिपा सकता हूँ। यदि सारी कहानी सुनना चाहते हो, तो सुन लो।'

'सुनाओ।'

इतने में प्रतिमा भी कमरे आ गई, बोली—'भैया तुमने तो ठीक तरह से खाया ही नहीं। मेरी बनाई चीजें पसन्द नहीं आईं शायद।'

'भाभी, इतना अनर्थ न ढाओ। मेरा पेट फटने को आया है और आपको अभी तक सन्तोष नहीं।'—रमेश ने मुसकरा कर कहा।

'प्रतिमा, छोड़ो इस किस्से को। अब ज़रा रमेश की कहानी सुनो।'

'मैं दत्तचित्त हूँ।'

अपने विवाह से लेकर अब तक जो कुछ हो चुका था, रमेश ने संक्षेप में सुना दिया और बोला—'अब तुम्हीं बताओ, मैंने कहाँ भूल की है, तारा का क्या दोष है?'

'तारा का दोष!' प्रतिमा का हृदय तारा के प्रति स्नेह से उमड़ पड़ा—'तुम दोष की बात कर रहे हो, पर मैं समझती हूँ कि तारा जैसी बहन को पाकर मैं कृतकृत्य हो गई हूँ। वे यहाँ कब तक पहुँचेंगी?'

'ज्यों ही यहाँ कुछ बात बनती है।'

'बाकी सब ठीक है', नवीन गम्भीर स्वर में बोला—'पर तुम्हें अपने मामा का रास्ता इस तरह रोक कर नहीं आना चाहिए था। आदर्शवाद की भी तो आखिर एक सीमा है।'

'इनकी बातें न सुनिए, भैया!' प्रतिमा बीच में ही बोल उठी—'तुमने जो कुछ किया है, ठीक किया है, और फिर तारा बहन भी तो

यही चाहती थीं।'

'हाँ, वह तो यही चाहती थी। जो कुछ मैंने किया है, शायद ठीक ही हो। पर...।'

'यही तो मैं कहता हूँ!' नवीन फिर बोल उठा—'तुमने आवश्यकता से अधिक उतावली दिखाई है।'

हो सकता है, यही बात हो। पर अब मैं पीछे लौटने का नहीं। इसी कलकत्ता नगरी में मेरे जीवन का नाटक होगा—सुखान्त या दुःखान्त, कौन जाने। और चाहो या न चाहो, तुम दोनों को उसे देखना होगा। सुखान्त होगा, तो साथ क्षण भर हँस लेना। दुःखान्त होगा, तो मेरी विफलता पर दो आँसू बहा देना।'

'भैया, ऐसी बातें न करो।' प्रतिमा का गला भर आया—'तुम अवश्य सफल होगे।'

'धन्यवाद, भाभी!'

इतने में नौकर नन्ही को ले आया। तीनों अपनी समस्या को भूलकर उसमें उलझ गये।

---

# ग्यारहवाँ परिच्छेद

भोजन के उपरान्त नवीन और प्रतिमा तो सुस्ताने लगे, किन्तु रमेश उनसे आज्ञा लेकर कलकत्ता देखने के लिए निकल पड़ा। ट्राम में सवार होकर वह एस्प्लेनेड पहुँचा और वहाँ से उसने ईडन गार्डन का रास्ता पकड़ा। जब वह बाग में पहुँचा तो लगभग तीन बजे थे। इसलिए वहाँ भीड़-भाड़ न थी।

एक सरोवर के किनारे वृक्ष के नीचे एक बेंच पड़ी थी। वह उस पर बैठ गया और सरोवर में खिले हुए विभिन्न रंगों के कमलों और उनके पत्तों पर बड़े-बड़े हीरों-सदृश थिरकते हुए जल-कणों का निरीक्षण करने लगा। उसने जेब से सिगरेट-केस निकाला। एक सिगरेट उसमें से छाँटी। दूसरी जेब से सिगरेट लाइटर निकाला, जिससे उसने अपनी सिगरेट को सुलगाया। उसके कश खींचता हुआ वह सोचने लगा कि उसे अब क्या करना होगा। परन्तु बहुत सोचने के बाद भी किसी एक बात पर वह अपना ध्यान जमा न पाता था। सरोवर के दूसरे किनारे एक वृक्ष पर कुछ पक्षी शोर मचा रहे थे। कुछ क्षण वह उनकी ओर ही देखता रहा, फिर उठकर टहलने लगा। बहुत देर तक वह यूँ ही टहलता रहा। इस बीच में लोगों के झुण्ड-के-झुण्ड बाग में आने आरम्भ हो गये थे और वहाँ काफी चहल-पहल हो चली थी। उस भीड़-भाड़ से बचने के लिए वह बाग के पश्चिम की ओर चल दिया और फिर बाग से निकलकर हुगली के आउट्रम घाट पर जा पहुँचा।

घाट पर दो-चार बेंचें पड़ी थीं, वह उनमें से एक पर बैठ गया। कुछ स्टीमर घाट पर खड़े थे और एक स्टीमर घाट को छोड़ कर कलकत्ता से दूसरी ओर न-जाने किधर जा रहा था। रमेश उसकी ओर देखता रहा। नदी के उमड़ते हुए वेग और उठती हुई लहरों को वह इस बेपरवाही से चीरता हुआ जा रहा था कि रमेश मुग्ध हो गया। इतने महान जल-प्रवाह पर इस छोटे-से पोत ने कैसी अद्‌भुत विजय प्राप्त की हुई है, यह विचार उसके मन में आया। इतने बड़े संसार पर उसका व्यक्तित्व, क्षुद्र ही सही, क्या विजय प्राप्त नहीं कर सकता? क्यों नहीं?

उसके मन ने कहा। पर कैसे? उसकी बुद्धि ने पूछा। फिर उसकी दृष्टि स्टीमर से हटकर दूर सामने आकाश पर जा लगी। आकाश पर डूबते हुए सूर्य की लालिमा छाई हुई थी। उस पर कहीं-कहीं बादलों के कई टुकड़े भी विशालकाय रंग-बिरंगी मूर्त्तियाँ बनाते हुए इधर-उधर दौड़ रहे थे। काफी देर रमेश उसी दृश्य को देखता रहा और एक के बाद एक सिगरेट सुलगाता रहा। इतने में उसे ऐसा लगा, मानो एक छाया सी उस पर पड़ी हो। उसने मुड़ कर देखा। एक राहगीर उसके पास से होता हुआ धीरे-धीरे चला जा रहा था। रमेश ने उससे ध्यान हटा कर फिर नदी की लहरों और सूर्यास्त में अपने को उलझा दिया।

दो मिनट बाद वह राहगीर फिर लौट आया और अब की बार उसके सामने से निकल गया। रमेश ने ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखा। वह ग्रे रंग का बहुत बढ़िया समर सूट पहने था। सिल्क की नेकटाई भी सूट से मिलती-जुलती थी। सिर नंगा था और बाल अधपके, किन्तु ढंग से बनाये हुए थे। उसकी अवस्था लगभग पचास वर्ष की होगी। नेत्रों से क्षमता टपकती थी और ओठों पर एक हलकी-सी मुसकान की छाया थी। उसने एक उड़ती हुई दृष्टि से रमेश की ओर देखा और दो चार कदम आगे बढ़ गया। फिर सहसा लौट पड़ा और रमेश के पास पहुँचकर उससे अंगरेज़ी में दियासलाई की माँग की। उसकी भाषा मँजी हुई ही न थी, बल्कि उसके कहने का ढंग भी निर्दोष था। रमेश ने दियासलाई न होने की क्षमा माँगी; किन्तु सिगरेटलाइटर उसे पकड़ा दिया। आगन्तुक ने चाँदी का बढ़िया सिगरेट-केस जेब से निकाला। उसमें से ध्यानपूर्वक एक सिगरेट ली और उसे ओठों के एक कोने में रखकर बड़े ध्यानपूर्वक सुलगाया। फिर रमेश का लाइटर

लौटाता हुआ उसी बेंच पर बैठ गया।

'आप शायद पंजाबी हैं'—बैठते हुए उसने प्रश्न किया।

'जी हाँ, और आप ?'

'मैं !' वह खुलकर मुसकराया—'मेरा, क्या पूछते हैं। कहने को तो मैं हिन्दोस्तानी हूँ, पर मुझे संसार का नागरिक ही समझिए। ईटन के प्रसिद्ध पब्लिक स्कूल की चहारदीवारी के अन्दर मैंने लार्ड डगलस की सहायता से सिगरेट पीना सीखा। पेरिस के उच्चतम रेस्तराँ में पहली बार मैंने मदिरा का रसास्वादन किया। हालीवुड के प्रसिद्ध-से-प्रसिद्ध डाइरेक्टरों, ऐक्टरों तथा ऐक्ट्रेसों का मैं अतिथि रह चुका हूँ। माउण्टी कारलो के सिवा मैं किसी दूसरी जगह "गैम्बल" नहीं करता। मैं परसों ही यहाँ लन्दन से हवाई-जहाज द्वारा पहुँचा हूँ और दो-चार रोज़ में फिर जाने वाला हूँ।' यह कहते-कहते उसने धुएँ का एक संसार रच दिया। यद्यपि जो कुछ उसने कहा था उस पर एकाएक विश्वास करना कठिन था; किन्तु उसके कहने का ढंग, उसकी बात-चीत इतनी प्रभावोत्पादक थी कि रमेश को उसके एक-एक शब्द पर विश्वास हो गया। इतने अद्भुत व्यक्ति से भाग्यवश परिचय प्राप्त करके उसने अपने-आपको कृतकृत्य माना और पूछा—'आप यहाँ कैसे आये हैं ?'

'मैं अपने बिजनेस के सिलसिले में यहाँ आया हूँ। मैं अपना एक आफिस यहाँ खोलना चाहता हूँ। बम्बई, मद्रास और कराची में तो मेरी ब्रांचें हैं; किन्तु कलकत्ता में मैंने अभी तक ब्रांच नहीं खोली है। सच पूछो, तो असली मानी में यह बन्दरगाह है भी तो नहीं। इसलिए मेरे यह बहुत काम का नगर नहीं है। और आप यहाँ कैसे आये हैं ?'

'मैं ?' रमेश ने कहा—'मैं भी किसी काम-काज की खोज में यहाँ पहुँचा हूँ। आप विलायत से आये हैं। वहाँ की अवस्था आजकल कैसी है ?" रमेश उत्सुकता से पूछता चला गया--"वहाँ पर युद्ध का क्या असर पड़ा है ?'

उस समय दूसरे महायुद्ध को आरम्भ हुए लगभग दो वर्ष होने को आये थे।

'युद्ध का ? क्या बताऊँ। फटी हुई दरार, जलते हुए महल, झुलसे हुए वृक्ष, भय-प्रकम्पित पशु-पक्षी और साहस तथा वीरता से भरे हुए नर-नारी—यह है विलायत की अवस्था।' इसके साथ ही उन महलों, पशु-पक्षियों और नर-नारियों का चित्रण इस खूबी से वह करता चला गया, मानो अब भी सब-कुछ प्रत्यक्ष देख रहा हो। उसकी बातचीत से ऐसा लगता था कि वह न केवल विलायत में रहकर ही आया है, बल्कि उसने वहाँ का एक-एक कोना भलीभाँति देखा भी है। 'किन्तु यह कहानी तो बहुत लम्बी है।' नवागन्तुक ने कलाई पर लगी हुई घड़ी की ओर देखते हुए समाप्त किया—'मुझे अब एक जगह ज़रूरी पहुँचना है। यदि आप कल कहीं मिलें, तो फुरसत से बातचीत हो सकती है।'

'कहाँ ?'—रमेश ने उत्सुकता से पूछा।

'मेरे होटल में आ जाइये। सुबह चाय वहीं पीजिये। ग्रैण्ड होटल के कमरा नंबर २५ में मैं ठहरा हूँ।' उसने जेब में हाथ डालकर अपना एक कार्ड निकाला—'और यह लीजिए, मेरे नाम का कार्ड। आ सकेंगे न ?

'प्रसन्नता से।'—रमेश ने कहा।

'अच्छा, अब इजाज़त चाहता हूँ।'

नवागन्तुक उठ खड़ा हुआ। रमेश को हाथ जोड़कर नमस्कार किया और तेज़ी से चल दिया। उसके कुछ दूर जाने पर रमेश ने जेब से सिगरेट लाइटर निकाला और उसकी ज्योति में कार्ड को पढ़ा। कार्ड के मध्य में मोटे अक्षरों में छपा था—डाक्टर पी० जी० जीवन एम० ए०, पी-एच० डी० और बायें हाथ के कोने में बारीक अक्षरों में था—इण्टरनेशनल्स लिमिटेड, लन्दन। रमेश, जो उसकी बातचीत से ही उस पर मोहित हो चुका था, कार्ड देखकर और भी प्रभावित हुआ। इतने महान व्यक्ति से इस भाँति अचानक मिलना उसके लिए कितने भाग्य की बात थी! कौन जाने अपनी किसी कम्पनी में डा० जीवन उसे कोई पद दे दे। जब रमेश उस बेंच से उठा, तो कल्पना उसके भविष्य के ऐसे सुनहले चित्र खींच रही थी कि उल्लास से उसके पाँव पृथ्वी पर सीधे नहीं पड़ रहे थे।

---

## बारहवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन प्रातः जब रमेश उठा, तो उसके हृदय में हलकी-सी धड़कन हो रही थी। यद्यपि डा० जीवन ने उसे कुछ भी संकेत नहीं किया था; पर उसके कान में कोई कह रहा था कि आज की भेंट से उसके जीवन का एक नवीन अध्याय आरम्भ होने वाला है। जब तैयार होकर वह ट्राम में बैठा, तो साढ़े सात बजे थे। उसे आठ बजे ग्रैण्ड होटल पहुँचना था। रसा रोड की घनी बस्ती को चीरती हुई ट्राम आगे बढ़ी जा रही थी। रास्ते में दोनों ओर खूब भीड़-भाड़ थी;

किन्तु उस सब-कुछ को देखता हुआ भी रमेश मानो उससे बेखबर था। उसका मन उड़-उड़ कर उस महान पुरुष से होने वाली भेंट को कल्पना के बन्धनों में बाँधने के लिए फड़फड़ा रहा था। महान! हाँ महान ही तो! महानता का कौन सा गुण डा० जीवन में नहीं था? इन्हीं विचारों में तन्मय रमेश ग्रैण्ड होटल जा पहुँचा।

जब उसने डा० जीवन के कमरे का द्वार जाकर खटखटाया, तो जरा सी दरार बनाता हुआ द्वार का एक अंश खुला। दो हलके हरे रंग के नेत्रों ने उसका ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया। उनकी स्वामिनी के लिप-स्टिक द्वारा रंजित पूर्णतया विकसित होंठ ज़रा से हिले और अँगरेजी में उसने पूछा—'कहिए?'

'क्या डा० जीवन यहाँ नहीं ठहरे हैं?—रमेश ने चकित स्वर में पूछा।

'हाँ, यहीं रहते हैं।' अबकी बार द्वार पूरी तरह से खुल गया—'आप का कार्ड?'

'कार्ड व्यर्थ है, क्योंकि वे मेरा नाम नहीं जानते। कल रात उनसे भेंट हुई थी।'

आप अन्दर आ जाइए। वे आप की ही प्रतीक्षा में बैठे हैं।'

रमेश अन्दर घुस गया। उसने सिर से पाँव तक अपने प्रश्नकर्त्ता की ओर देखा। वह हरे रंग की साड़ी पहने थी। चेहरा आकर्षक, रंग चम्पा-सा गोरा, अर्ध सँभाली हुई सुनहली केशराशि, नाक छोटी किन्तु तीखी और पतला-लम्बा शरीर, जो साड़ी में छिप नहीं पा रहा था। रमेश, जो अभी तक विस्मित था, एकाएक चकाचौंध हो गया।

'आप इस कुर्सी पर बैठिए, मैं अभी डा० जीवन को सूचित

करती हूँ।'—कहती हुई वह भीतरवाले कमरे में चली गई और अपने पर प्रभुत्व पाने की कोशिश करता हुआ रमेश ज्यों का त्यों खड़ा रहा।

वह आधे क्षण में ही लौट आई—'चलिए।'

रमेश उसके पीछे-पीछे हो लिया। डा० जीवन एक आराम-कुरसी पर बैठा था। उसने उठकर मुसकराते हुए रमेश का स्वागत किया। उसे सामने वाली कुर्सी पर बैठने का आदेश दिया और लड़की की ओर देख कर बोला—'मिस शैला, अब चाय का प्रबन्ध करो।'

'बहुत अच्छा, डा० जीवन!'—वह चुपके से कमरे से बाहर चली गई।

'मिस शैला मेरी प्राइवेट-सेक्रेटरी है।' डाक्टर जीवन ने कहना आरम्भ किया—'क्या कहूँ, इस्पात के विषय में इसका व्यापारिक ज्ञान तो बेजोड़ है ही; पर इसकी वैज्ञानिक अनुसन्धान की जानकारी भी असाधारण है।'

'आप इस्पांत का व्यापार करते हैं?'

'मेरी एक लाइन इस्पात भी है।'

'आप इन्हें भी विलायत से साथ लाये हैं?'

'हाँ, अब तो मेरे साथ ही आई है; पर मैंने इसे विलायत में नहीं पाया। यह मुझे यहीं भारतवर्ष में ही मिली थी, आज से चार वर्ष पहले।'

'कहाँ?'

बम्बई में जुहूवाले समुद्र-तट पर बालू के महल बनाते हुए मैंने इसे पाया था।'

'बालू के महल !'—रमेश ने आश्चर्य से डा० जीवन की ओर देखा।

'हाँ, सीप और शंखों के सहारे बालू की दीवारें खड़ी करना बिलकुल सम्भव है।'—डा० जीवन खिलखिला कर हँसा।

इतने में बैरा चाय ले आया। शैला उसके पीछे-पीछे चली आ रही थी। बैरा ने तिपाई पर चाय तथा खाने-पीने का सामान लगा दिया। शैला आगे बढ़कर तिपाई के पासवाली कुर्सी पर बैठ गई और बड़े ढंग से चाय के दो प्याले बना दिये। रमेश ने ज़रा प्रश्नसूचक ढंग से शैला की ओर देखा मानो यह पूछने जा रहा हो कि तुमने अपना प्याला क्यों नहीं बनाया? शैला ने रमेश के चेहरे पर लिखित प्रश्न को पलक मारते ही पढ़ लिया। अपने मुसकराते हुए ओठों और हँसते हुए नेत्रों द्वारा कुछ इस ढंग से उसकी ओर देखा कि उसका प्रश्न छूमन्तर हो गया। रमेश ने प्याला अपनी ओर खींच लिया और चम्मच से चाय की चीनी हिलाने लगा। दूसरा प्याला डा० जीवन ने पकड़ लिया। शैला उसी क्षण उठ कर बाहर चली गई।

'आपकी चाय तो खूब है।'—रमेश ने एक घूँट पीते हुए कहा।

'यह मेरी चाय नहीं,' डाक्टर जीवन अर्द्ध-निमीलित नेत्रों से रमेश की ओर देखते हुए बोला—'मेरी चाय का रसास्वादन करना हो, तो कभी मेरी लन्दनवाली झोपड़ी में पधारिये।'

'लन्दन में? मेरा भाग्य ऐसा कहाँ?'

'भाग्य! पुरुषार्थ के अभाव का नाम भाग्य है। यदि आप हिम्मत करें, तो आपके लिए क्या कठिन है। लन्दन में पहुँचना

तो क्या, आप-जैसा उच्चशिक्षा-प्राप्त सुलझे मस्तिष्क का नवयुवक चाहे तो आधा लन्दन मोल ले सकता है।'

रमेश के शरीर में बिजली दौड़ गई। उसे यह आशा न थी कि डा० जीवन के मन में उसके प्रति इतनी ऊँची धारणा होगी। अपने भावों को छिपाता हुआ बोला—'आप मुझे यूँ ही प्रोत्साहन दे रहे हैं, अन्यथा मुझ में है ही क्या।'

'मैं झूठा प्रोत्साहन देनेवाला आदमी नहीं हूँ।'—डाक्टर जीवन ने गम्भीर स्वर में जवाब दिया। उसके नेत्र अब पूरी तरह खुल गये थे, उनसे रमेश को मानो तौलता हुआ कहता चला गया—'मिस्टर रमेश, जैसे जौहर की गति जौहरी जानता है, वैसे ही मैं मनुष्य पहचानता हूँ। आपका भविष्य उज्ज्वल है, यह मैं कह सकता हूँ; किन्तु आपको किसी महत्वाकांक्षा को अपनाना होगा।'

'केवल अपनाने से ही तो नहीं चलेगा। उसके लिए साधन भी तो जुटाने होंगे।'

'साधन! इसमें क्या कठिनाई है? यदि आप चाहें, तो इसका प्रबन्ध मैं ही कर सकता हूँ।'

'कैसे?'—रमेश का हृदय ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा।

'आपको शायद बात पसन्द नहीं आयगी!'—डाक्टर जीवन जरा हिचकिचाया।

'आप कहिए तो सही।'

डा० जीवन एक क्षण चुप रहा। फिर धीरे से बोला—'मैं आप को इंटरनेशनल्स लि० में एक स्थान दे सकता हूँ; किन्तु...।'

'किन्तु क्या?'—रमेश के स्वर में घबराहट का पुट था।

'किन्तु यह कि मैं आरम्भ में अधिक वेतन न दे सकूँगा। यदि आप पाँच सौ मासिक चाहें, तो कल से काम का श्रीगणेश कर दीजिये।'

'पाँच सौ !'—रमेश प्रसन्नता से उछल पड़ा। उस-जैसे नौसिखिए को आरम्भ में ही इतना वेतन !

डाक्टर जीवन को मानो उसके चेहरे पर की प्रसन्नता दीखी ही नहीं। क्षमा-सूचित स्वर में कहता चला गया—'यह मैं मानता हूँ कि आपकी योग्यता को दृष्टिगत रखते हुए यह वेतन कम है; पर मैं शीघ्र ही वेतन बढ़ा दूँगा।'

रमेश कृतज्ञता-भरे स्वर में बोला—'मेरे लिए वह वेतन आशा से अधिक है। और आपका धन्यवाद मैं किन शब्दों से करूँ, समझ में नहीं आता।'

'धन्यवाद ! मुझे इसकी जरूरत नहीं।'—डाक्टर जीवन का स्वर एकाएक बदल गया—'मुझे काम चाहिए काम, रमेश ! तो कल से तुम आ सकोगे ?'

'जी हाँ। पर काम कहाँ होगा ?'

'अभी इसी होटल में। आज तुम्हारे कमरे का प्रबन्ध हो जायगा। अपना सामान लेकर कल यहाँ पहुँच जाओ।

कुछ देर बाद जब रमेश होटल से निकला, तो उसे ऐसे लगा, मानों चारों ओर हरियाली छाई हुई है, पवन में अनूठा संगीत है और आकाश का कोना-कोना हँस रहा है।

———

# तेरहवाँ परिच्छेद

अगले दिन रमेश जब सामान लेकर ग्रैंड होटल पहुँचा, तो डाक्टर जीवन कहीं बाहर गये हुए थे। अकेली शैला उसकी प्रतीक्षा में बैठी थी। उस दिन उसने बिस्किट-रंग का रेशमी फ्राक पहन रखा था। मोज़े उसके शरीर के रंग से मिलते-जुलते थे। केश-राशि को भली प्रकार सँभाल रखा था। क्रीम तथा लिपस्टिक विशेष ध्यानपूर्वक इस्तेमाल की हुई थी, जिसके कारण क्रीम चेहरे के वर्ण का एक अंग बन गई थी और लिपस्टिक का रंग ओठों के रंग में समा गया था। रमेश के द्वार खटखटाने पर द्वार खोलकर उसने रमेश का स्वागत मुसकरा कर किया—'आइए मिस्टर रमेश, मैं आप ही की प्रतीक्षा कर रही थी। आपका सामान कहाँ है?'

'बाहर टैक्सी में।'

'आप बैठिए, मैं अभी उसे आपके कमरे में पहुँचाने का प्रबन्ध करती हूँ।' यह कहकर उसने नौकर को आवाज़ दी। वह एक क्षण में ही आ उपस्थित हुआ। 'साहब का सामान नं० २७ में पहुँचा दो।'

'क्या-क्या सामान है आपका हजूर?'—नौकर ने पूछा।

'दो सूटकेस, एक बिस्तर और एक अटैची-केस।'

नौकर सामान के लिए चल दिया और रमेश शैला के सामने-वाली कुरसी पर बैठ गया। एक बार उसकी ओर उड़ती हुई दृष्टि से देखा और ज़रा झिझकता हुआ बोला—'इस्पात और आप इन दो में यत्न करने पर भी मुझे सामंजस्य नहीं दीखता। कह नहीं सकता क्यों।'

'आप की दृष्टि में मेरा स्थान कहाँ है ?'—शैला ने उत्सुकता से पूछा।

'मेरी दृष्टि में ?' रमेश मानो नेत्रों द्वारा शैला को तोलता हुआ बोला—'सागर की लहरों पर थिरकते हुए रत्न-जड़ित स्वर्ण-मन्दिर की रानी यदि आप होतीं तो शायद अधिक स्वाभाविक होता।'

शैला का हृदय उल्लास से प्रफुल्लित हो उठा। उसे छिपाती हुई बोली—'और मेरे पुजारी आकाश-कुसुमों द्वारा मेरी पूजा में रात दिन निमग्न होते। मि० रमेश कल्पना को बाँधकर रखो नहीं तो वह हाथों से निकल कर—' शैला जरा रुकी।

'रुक क्यों गईं आप ?'—रमेश प्रोत्साहन देता हुआ कहने लगा—'कहिए, क्या करेगी कल्पना हाथों से निकल कर।'

'आपकी जग-हँसाई करायेगी और क्या ?'

'क्या आप में कल्पना नहीं ?'—रमेश ने पूछा।

'है क्यों नहीं, पर मैं कल्पना की चेरी नहीं।'

'और आपके विचार में मैं कल्पना का दास हूँ।'

'मैंने तो यह नहीं कहा।'

'मतलब तो यही था।'

'हो सकता है।' शैला ने गौर से नेत्रों द्वारा चीरते हुए रमेश की ओर देखा—'यदि किसी नारी की बात मानने में आपको हिच-किचाहट न हो, तो मैं आपसे अनुरोध करूँगी कि कल्पना से ऊपर उठना सीखो।'

'कल्पना से ऊपर उठना ?' रमेश ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से शैला के मुख की ओर देखा। फिर गहरे सोच में डूब गया।

कल्पना ! क्या उसी की मनमानी के कारण ही तो वह यूँ मारा-मारा नहीं फिर रहा । घर से दूर, मन से बेचैन, शान्ति खोया हुआ । निस्सन्देह यही बात है। उसे कल्पना को जीतना होगा, उसे मनमानी से रोकना होगा। पर कैसे ?

ठीक उस समय नौकर ने प्रवेश किया। 'साहब का सामान नं० २७ में लगा आया हूँ।'—उसने कहा।

रमेश चौंककर बोला, मानो गहरी निद्रा से जागा हो—'बहुत अच्छा। मैं अभी वहीं आता हूँ।'

नौकर चला गया । रमेश भी उठ खड़ा हुआ, किन्तु बाहर जाने के बजाय वह कमरे में आधा क्षण इधर-उधर घूमा, फिर शैला से कहने लगा —'शायद आपने ठीक ही कहा है । मुझे कल्पना से लड़ना ही पड़ेगा।'

'आप विजयी हों, यही मेरी प्रार्थना है ।'—शैला ने गम्भीरता से जवाब दिया।

फिर रमेश उतावली से कमरे से बाहर हो गया । नौकर बाहर खड़ा था। उसके साथ-साथ वह अपने कमरे की ओर चल दिया।

रमेश का कमरा यद्यपि बहुत बड़ा न था, किन्तु खूब ढंग से ठीक किया हुआ था । घुसते ही ज़रा हट कर एक बढ़िया सोफा-सेट रखा हुआ था, जिसने कमरे को ड्राइंग-रूम का रूप दे दिया था । एक कोने में लिखने वाली मेज तथा एक कुरसी रखी थी । उसके बाद एक बहुत बड़ा परदा डालकर कमरे को दो भागों में बाँट दिया गया था। उस परदे के खुले हुए अंश में से एक पलंग और उसके ऊपर दूध-से श्वेत बिछे बिछौने का एक भाग दीख रहा था। रमेश

का ध्यान इनमें से किसी भी वस्तु की ओर नहीं गया। वह चुपके से एक आरामकुरसी पर बैठ गया।

'कुछ पीने के लिए लाऊँ, साहब?'

'हाँ, एक सोडा ले आओ।' कुछ ही देर बाद बैरा रमेश के निकट रखी हुई तिपाई पर सोडे का गिलास रख गया। रमेश ने उसे उठा कर एक दो घूँट पिया। फिर उसे वहीं रख कर सोच में निमग्न हो गया।

समुद्र पर थिरकते हुए स्वर्ण-मन्दिर और उसको प्रज्ज्वलित करती हुई उसकी खिड़की में खड़ी ज्वार-भाटे की ओर देखती हुई शैला का चित्र उसकी कल्पना बनाने लगी। उसे भासित हुआ कि समुद्र की लहरों पर भागता हुआ उछल कर वह भी शैला के साथ जा खड़ा हुआ है। इसके अनन्तर उसकी कल्पना स्पष्ट चित्र अंकित करने में असमर्थ हो गई। धीरे-धीरे उसके काल्पनिक चित्र धुँधले होने लगे और शैला तथा उसका चित्र एकाएक विलीन हो गया। कुछ ही काल के बाद ज्योतिर्मय होकर वही स्वर्ण-मन्दिर फिर सागर पर थिरकने लगा और उसकी खिड़की में रमेश ने अपने-आपको खड़ा पाया। पर अब की बार उसकी साथिन शैला नहीं, तारा थी।

तारा! रमेश सहसा चौंक पड़ा। तारा को वह कैसे भूल रहा था? उसका हृदय उसे किधर खींच रहा था। इस हृदय, इस पगली कल्पना पर उसे विजय प्राप्त करनी ही होगी।

वह कुरसी से उठ खड़ा हुआ और कमरे में टहलने लगा। फिर तिपाई पर पड़े हुए सोडे से गिलास को उठाया और उसे एक घूँट में पी गया। इतने में उसका द्वार किसी ने खटखटाया!

'चले आइए।'—रमेश ने कहा।

हाथ में दो छोटी-छोटी अंगरेज़ी की किताबें लिये हुए शैला ने प्रवेश किया और बोली—'यह लीजिए।"

'धन्यवाद।' रमेश ने हाथ बढ़ाकर दोनों पुस्तिकाएँ पकड़ लीं। उत्सुकता से उनके मुखपृष्ठों को देखा। एक पुस्तक का नाम था 'इस्पात—एक वैज्ञानिक अध्ययन' और दूसरी का शीर्षक था 'इस्पात और उसका व्यापारिक महत्त्व'। इसके बाद उसकी प्रश्न-सूचक दृष्टि शैला पर पड़ गई।

'डाक्टर जीवन ने इन्हें भेजा है।' शैला ने कहा—'वे चाहते हैं कि जितनी जल्दी हो सके, आप इन्हें पढ़ लीजिएगा, फिर काम-काज की बात होगी।'

'बहुत अच्छा'

शैला जाने लगी। उसे रोकते हुए रमेश बोला—'आप तो चल दीं। एक घड़ी मेरा आतिथ्य भी स्वीकार कर लिया होता।'

'थोड़ी देर में आऊँगी। डा० जीवन को एक-दो ज़रूरी चिट्ठियाँ लिखवानी हैं।' वह खुलकर मुसकराई और चुपके से कमरे के बाहर हो गई। रमेश ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा।

---

## चौदहवाँ परिच्छेद

शैला के चले जाने पर रमेश बहुत देर वैसे ही खड़ा रहा। उस दिन कलकत्ता पहुँचे हुए उसे लगभग एक सप्ताह होने को आया था, किन्तु चार लकीरों की पहुँच का पत्र लिखने के अतिरिक्त उसने तारा को अपने विषय में कुछ भी नहीं लिखा था। यदि

सच पूछा जाय तो पिछले दो चार दिनों में तारा उसके विचारों का विषय बन ही न पाई थी। और अब उसका मन एक दूसरी ही दिशा में चलने के लिए आग्रह कर रहा था। यह ठीक है कि उस दिशा में हरियाली और सुनहलापन उसे दीख रहा था। किन्तु क्या वह कल्पना द्वारा कल्पित एक मायावी सृष्टि की ही तो झलक न थी। तारा के प्रति अपनी यह उदासीनता देखकर उसके शरीर में ग्लानि की एक लहर दौड़ गई। तारा! उसी ने तो उसके जीवन में नव संचार किया था और उसे ही वह भुलाने जा रहा था। उसने अपने दोनों कन्धों को झटका देकर हिलाया और तारा को पत्र लिखने का निश्चय करके लिखनेवाली मेज़ की ओर बढ़ा। इतने में सहसा उसकी दृष्टि इस्पात-विषयक दोनों पुस्तिकाओं पर पड़ गई। उसने कलाई पर बँधी हुई घड़ी की ओर देखा। लगभग तीन बज रहे थे। शाम को डाक्टर जीवन उन पुस्तकों के विषय में पूछ-ताछ अवश्य करेंगे। इसलिए तब तक इन्हें अवश्य समाप्त कर लेना ठीक होगा। पहले दिन कहीं वे यह न समझ लें कि वह काम से जी चुराता है। पुस्तिकाएँ उठाकर वह अपने सोफे पर आ बैठा। तारा को पत्र लिखना रात्रि तक स्थगित हो गया।

किताबें बहुत छोटी थीं, इसलिए रमेश ने दो ही घण्टों में उन्हें पढ़ डाला। अभी उसने उन्हें समाप्त किया ही था कि बैरा आ पहुँचा।

'साहब ने सलाम दिया है।'—उसने कहा।

'चलो, मैं आता हूँ', रमेश बोला—'किन्तु मैंने तो अभी चाय भी नहीं पी।'

'चाय का प्रबन्ध साहब के यहाँ ही है।'

बैरा के पीछे-पीछे रमेश भी बाहर निकल गया।

डाक्टर जीवन के कमरे में चाय तैयार थी। चाय की तिपाई के के निकट एक गद्देदार कुरसी पर डाक्टर जीवन बैठा था। शैला उसके प्याले में चाय ढाल रही थी। डाक्टर जीवन ने मुसकरा कर रमेश का स्वागत किया—'आओ रमेश, चाय तो पियोगे ?'

'जी हाँ।'

'तो बैठो।'

रमेश बैठ गया। शैला ने एक प्याला चाय का उसके लिए भी बना दिया और फिर पहले दिन की भाँति वहाँ से खिसक गई।

चाय का प्याला उठाने से पहले डा० जीवन ने एक के बाद एक दो सैंडविच उठाकर खाईं और फिर चाय का एक घूँट लेकर बोला—'वे पुस्तिकाएँ देखीं ?'

'हाँ जी' रमेश ने हाथ में पकड़ी हुई चाय की प्याली तिपाई पर रख दी। 'किन्तु यदि आप उनके विषय में मेरी परीक्षा लेना चाहते हैं तो मैं पास न हो सकूँगा।'

डाक्टर खिलखिला कर हँसा। मैंने परीक्षा के लिए वे किताबें नहीं भेजी थीं। मैं तो केवल यह चाहता हूँ कि तुम्हारे मस्तिष्क में इस्पात-विषयक एक वातावरण उत्पन्न हो जाय। यदि उन पेंफलेटों ने उस वातावरण का बीज अंकुरित कर दिया है, तो बस ठीक है।'

'सो तो हो गया है।'

'तो कल से अपना काम-काज सँभालो। तुम्हें क्या करना होगा, मिस शैला तुम्हें समझा देंगी।'

'बहुत अच्छा।'

इसके अनन्तर डाक्टर ने अपने काम-काज के बारे में कोई भी

बात न की। इधर-उधर की बातें होने लगीं। द्वितीय महायुद्ध का क्या अन्त होगा। रमेश को यह प्रश्न बहुत दिनों से तंग कर रहा था। घुमा फिराकर उसने यह प्रश्न डाक्टर के सम्मुख रख दिया।

'युद्ध का अन्त'—डाक्टर गम्भीर स्वर में कहने लगा—'कौन कह सकता है, क्या होगा। अभी तो यथार्थ में युद्ध आरम्भ भी नहीं हुआ।'

'आरम्भ भी नहीं हुआ?—रमेश ने आश्चर्य से डाक्टर की ओर देखा।

'अभी तक तो इसकी ज्वाला में केवल यूरोप दहक रहा है। इस युद्ध की लपटें अभी तो एशिया के कोने-कोने में फैलने वाली हैं। हमारे महाप्रदेशों से दूर पाताल-देश अमरीका को अभी इस धधकती हुई ज्वाला का रसास्वादन करना है। इसे युद्ध न कहो रमेश, यह इस सभ्यता का विध्वंस-यज्ञ है।'

इतने में चाय समाप्त हो गई। बैरा बरतन उठा ले गया। इस बीच में शैला फिर कमरे में आ गई। उसको लक्ष्य करते हुए डाक्टर ने कहा—'देखो, रमेश ने वे दोनों किताबें देख ली हैं। अब इसे काम-काज की सारी बातें समझा देना।'

'बहुत अच्छा। और तो कोई काम नहीं।'

'क्यों, कहीं जाना है?'

'हाँ।'

'हो आओ।'

शैला उसी समय उठ खड़ी हुई और तेज़ी से बाहर चली गई। इसके एक ही मिनट के बाद रमेश भी उठ खड़ा हुआ—मुझे भी

आज्ञा दीजिए।'

'क्यों, तुम भी घूमने जा रहे हो?'

नहीं, मुझे एक-दो ज़रूरी पत्र लिखने हैं।'

'बहुत अच्छा।'

डाक्टर जीवन उस कुरसी को छोड़कर कुछ अन्तर पर पड़ी आराम कुरसी पर जा बैठा और रमेश कमरे के द्वार की ओर बढ़ चला। जब वह बाहर पहुँचा तो शैला कमरे से ज़रा दूर हट कर अपने जूते का तस्मा ठीक कर रही थी। उसने मुड़कर रमेश की ओर देखा और मुसकराई—'आप भी चले आए डाक्टर को अकेला छोड़कर?'

'हाँ, मुझे एकाध पत्र लिखना था।'

'अच्छा', शैला के स्वर की निराशा छिपाये भी छिप न सकती थी, 'किन्तु मैं सोच रही थी—' शैला ज़रा रुकी।

क्या सोच रही थीं आप?'—रमेश ने प्रोत्साहन दिया।

'यही कि शायद आप भी घूमने जा रहे हैं।' यह कहते-कहते एक चित्ताकर्षक मुसकराहट शैला के मुख पर खेल उठी। रमेश के भीतर-बाहर एक बिजली-सी कौंध गई।

'पत्र तो फिर भी लिखा जा सकता है,' रमेश मधु-मिश्रित स्वर में बोला—'क्या मेरे साथ जाने से आप के प्रोग्राम में बाधा नहीं पड़ेगी?'

'आपके साथ चलने से मुझे प्रसन्नता होगी।'

'तो चलिए। किधर का इरादा है?'

'जिधर पाँव ले चलें?'

दोनों होटल से बाहर निकल पड़े। इस नव मित्रता से दोनों के हृदय प्रफुल्लित थे। बातों के अटूट प्रवाह पर बहते हुए वे घूमते-

घूमते हुगली के आउट्रम घाट पर जा पहुँचे, जहाँ पहले-पहल रमेश को डाक्टर जीवन का परिचय प्राप्त हुआ था। वह बेंच उस दिन भी खाली पड़ी थी। डूबते हुए सूर्य की लाल आभा हुगली के जल से छेड़-छाड़ कर रही थी। दोनों उस बेंच पर बैठ गये। बातों का सिलसिला टूट गया। वे मानो जादू से प्रेरित कभी डूबते हुए सूर्य और कभी उस जल-प्रवाह को देखने लगे। कौन जाने भविष्य के कौन-से स्वप्नों का ताना-बाना उनके मस्तिष्क बुन रहे थे। बहुत देर तक वे यों ही बने रहे। जब वे उठे, तो एक का हाथ दूसरे के हाथ में था। ऐसी अवस्था में एक-दूसरे का हाथ पकड़े वे होटल की ओर चल दिये।

---

## पन्द्रहवाँ परिच्छेद

जब वे बड़ी सड़क पर पहुँचे, तो घना अन्धकार हो चला था। सड़क पर चलते-चलते भी रमेश के दायें हाथ की अँगुलियाँ शैला के बायें हाथ की अँगुलियों में उलझी रहीं। युद्ध के कारण ब्लैक-आउट के नियमों का पालन करती हुई सड़क की बत्तियाँ उस अन्धकार पर विजय प्राप्त करने का विफल प्रयास कर रही थीं। इसलिए वे दोनों मानो संसार की दृष्टि से बचते हुए चले जा रहे थे, चुपचाप अपने-आप पर सन्तुष्ट। इतने में सामने से आती हुई एक मोटर की तीक्ष्ण ज्योति ने उन्हें प्रकाशमान कर दिया। दोनों ने एक-दूसरे की ओर चौंक कर देखा। उनके हाथ एक दूसरे से अलग हो गये। इतने में उन्हें पुनः अँधेरे में छोड़कर मोटर वहाँ से निकल गई। शैला ने एक दीर्घ निश्वास ली और बोली—'मोटर भी कितनी निर्दय चीज़ है।

जाते-जाते हमारी मानसिक शान्ति भंग कर गई है।'

'निस्सन्देह,' रमेश ने उसकी हाँ में हाँ मिलाई। 'पर आधुनिक जगत में रहकर इनसे छुटकारा भी तो नहीं हो सकता।'

'छुटकारा तो उसी चीज़ से हो सकता है जिसे हम न छोड़ना चाहें,' शैला की वाणी में एकाएक दुःख की थिरकन झलक उठी—'और जिससे हम छुटकारा पाना चाहते हैं, वह भूत की भाँति हमारे साथ चिपट जाती है।' इतना कहते कहते शैला खिल-खिलाकर बनावटी ढंग से हँसी—'हम अब जा किधर रहे हैं?'

'वापस होटल को।'

'चलो, पर मैं प्रतिदिन वहाँ का खाना खा-कर तंग आ चुकी हूँ।'

'यदि यह बात है, तो चलो किसी दूसरी जगह चलें।'

'कहाँ?'

'मैं एक चीनी रेस्तराँ जानता हूँ, जहाँ सब तरह का खाना बढ़िया मिलता है।'

'चलो वहीं चलें, किन्तु—' शैला ज़रा रुकी।

'क्यों? वहाँ भी नहीं जाना चाहतीं, तो न सही। यदि देशी पूड़ी और मिठाई खाने को जी चाहता हो, तो मुझे एक अत्युत्तम हलवाई की दुकान का पता भी मालूम है।'

'वह कहाँ है?'

'हैरिसन रोड पर।'

'तो वहीं चलिए।'

इतने में ट्रामगाड़ियों का जंक्शन आ गया। ट्राम में सवार होकर

वे दोनों हैरिसन रोड पर जा पहुँचे। थोड़ी सी पूछ-ताछ के अनन्तर उन्हें हलवाई की दुकान मिल गई। यद्यपि वहाँ का प्रबन्ध विलायती भोजन-शालाओं जैसा तो न था किन्तु वह इतना बुरा भी न था। फिर भी शैला को वहाँ बैठते हुए ज़रा-सी हिचकिचाहट हुई। किन्तु वह क्षणिक थी। ज्यों ही पकवान और मिठाइयाँ उसके सामने आईं, उसकी सारी हिचकिचाहट जाती रही। उन्हें खाकर उसे विशेष प्रसन्नता हुई।

जब अच्छी तरह खा-पीकर उन्होंने होटल की राह ली, तो रात काफ़ी भीग चुकी थी। रास्ते में उन दोनों ने बहुत कम बातचीत की, दोनों अपने-अपने विचारों में मग्न थे। किन्तु जितनी भी थोड़ी-सी बातचीत चली, उससे यह स्पष्ट था कि शैला के हृदय में रमेश के प्रति स्नेह का एक कोना अवश्य बन गया है।

होटल में पहुँच कर शैला अपने कमरे की ओर चली गई और रमेश अपने कमरे में जा पहुँचा। बिना कपड़े बदले वह आराम-कुरसी पर जा पड़ा। जेब से एक सिगरेट निकालकर सुलगाया और आँखें मूँदकर अपने जीवन की इस नई करवट पर विचार करने लगा। आज से तीन रोज़ पहले जिन व्यक्तियों को उसने स्वप्न में भी न देखा था, वे ही इतने ज़ोर से उसके जीवन में आ गये थे कि उसे अपने पाँव उखड़ते-से दीख पड़ते थे और व्यक्ति भी थे वे अद्वितीय। न उसने डाक्टर जीवन-सा पुरुष तब तक देखा था, न शैला-सी नारी! डाक्टर जीवन को तो उसने अभी बहुत कम देखा था, पर शैला को तो वह बहुत-कुछ जान गया था। शैला ने उसे वास्तविक रूप से आकृष्ट किया था। उस आकर्षण का रूप क्या था, उसने अपने-आप से

पूछा। केवल मैत्री। किन्तु क्या भविष्य में इस रूप में परिवर्त्तन नहीं होगा? आखिर वह पुरुष है और शैला नारी और वह पुरुष भी विवाहित! एकाएक उसके सम्मुख तारा की मूर्ति फिर आ खड़ी हुई। उसे सहसा याद आया कि उसने तारा को अभी तक पत्र नहीं लिखा। आँखें खोलकर वह अपने-आप को झटका देकर उठ खड़ा हुआ और लिखनेवाली मेज़ की ओर बढ़ा! उसपर नज़र पड़ते ही वह थोड़ा विस्मित हुआ। एक बन्द लिफाफे के साथ पिन द्वारा एक चिट लगी थी। उसने झटपट उसे उठा लिया। चिट नवीन की थी और पत्र तारा का।

नवीन उसे तारा का पत्र देने स्वयं आया था; किन्तु उसे वहाँ न पाकर और थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के बाद वह पत्र छोड़ कर लौट गया था। तारा का पत्र इस बार बहुत ही संक्षिप्त था। "तुम्हारा पत्र मुझे कई दिनों से नहीं मिला", उसने लिखा था—"इसलिए मैं बहुत चिन्तित हूँ। यह पत्र तुम्हें बुधवार को मिलेगा। यदि शुक्रवार के दोपहर तक तुम्हारा तार न मिला तो मैं शाम की गाड़ी से कलकत्ता को चल दूँगी।"

उस दिन शुक्रवार था। डाकखाने की मुहर से पता चलता था कि पत्र नवीन के पास बृहस्पतिवार को पहुँचा था। एक दिन की देरी किसी कारणवश उसने कर दी। रमेश ने घबराकर कलाई पर बँधी घड़ी की ओर देखा। उस समय ग्यारह बज रहे थे। अब तक तो तारा निश्चित रूप से शिमला छोड़ चुकी होगी। अब? किन्तु इसमें चिन्ता की क्या बात थी। उसे नौकरी मिल चुकी थी। वेतन यथेष्ट था। तारा का कलकत्ता आना अब उचित ही था। इसलिए जो-कुछ हुआ है, ठीक ही तो हुआ है। पर हृदय के अन्तस्तल में वह ऐसा अनुभव

कर रहा था कि यदि इस अवसर पर तारा कलकत्ता न पहुँचे, तो ठीक है। क्यों? इसका उत्तर स्पष्ट था, किन्तु वह उसे ज़बान क्या मस्तिष्क तक भी न लाना चाहता था।

---

## सोलहवाँ परिच्छेद

निश्चय तो रमेश यही करके चारपाई पर लेटा कि वह मस्तिष्क को मनमानी न करने देगा; पर मन में उठने वाले भावों का वेग उसके सँभाले कहाँ सँभलता था। तारा उसकी थी और वह तारा का था। फिर उसके इर्द-गिर्द चिन्ता क्यों मँडरा रही थी। शैला! क्या वही चिन्ता का एकमात्र कारण न थी? किन्तु क्यों? आखिर शैला उसकी सहकार्यकर्त्री से अधिक तो कुछ भी न थी। वह यूँ ही भय के भ्रम का शिकार हो रहा था। उसे इस भ्रम को दूर करना होगा। यह सोचते-सोचते उसने फिर करवट बदली और नेत्रों को बलपूर्वक मूँदने का प्रयत्न किया। इससे भ्रम दूर होने के बजाय और निकट आ खड़ा हुआ, यथार्थता में परिणत होने के लिए मचलने लगा। शैला का हाथ छूते समय जो बिजली उसके हृदय-प्रदेश में कौंधी थी, वह फिर एक बार उसके शरीर में दौड़ गई। यह भय का भ्रम नहीं, वास्तविक भय है। कौन इससे इनकार कर सकता था? तो वह क्या करे? पर अब अधिक सोचने से क्या लाभ? एक-दो दिन में तारा वहाँ आ ही रही थी। और यह विशेषतया उसकी समस्या थी। वह कलकत्ता पहुँचने पर स्वयमेव उसे हल कर लेगी। यह तो ठीक है; पर रमेश का उसकी दृष्टि में क्या मूल्य रह जायगा? रमेश के मस्तक पर पसीने की

बूँदे आ गईं। वह चारपाई से उठ खड़ा हुआ और कमरे में टहलने लगा।

कुछ काल टहलने के अनन्तर वह पढ़ने वाली मेज़ पर जा बैठा। टेबल-लैम्प को जला मेज़ पर पड़ी हुई वस्तुओं को उथलने-पुथलने लगा। उसने इस्पात-सम्बन्धी दोनों पुस्तिकाएँ उठा लीं और उनके पृष्ठ उलटने लगा। फिर उन्हें फेंक कर वहाँ से उठा और तिपाई पर पड़े हुए सिगरेट-केस से एक सिगरेट निकाल कर उसे सुलगाया और उसके कश खींचता हुआ आराम कुरसी पर बैठ गया। एक के बाद एक तीन सिगरेटें उसने वहाँ बैठे-ही-बैठे समाप्त कीं, तब कहीं चारपाई का सहारा लिया। इस बार कुछ प्रयास करने पर उसे टूटी-फूटी नींद अवश्य आ गई।

सुबह वह चारपाई से अभी उठा ही था कि किसी ने उसका द्वार खटखटाया। उसने उठकर झटपट द्वार खोला। सामने नवीन खड़ा था। रमेश ने प्रसन्न होकर उसका स्वागत किया—'आओ भाई, मुझे खेद है, रात तुम्हें यूँ ही कष्ट उठाना पड़ा। मैं ज़रा घूमने चला गया था।'

'जानता हूँ।' नवीन नेत्रों से उसे चीरता हुआ बोला—'मैं तुम्हारी प्रतीक्षा भी कर सकता था; एक तो प्रतिमा मेरे साथ थी और दूसरे—।' नवीन ज़रा रुका।

'दूसरे क्या ?'—रमेश ने पूछा।

'यही कि जिस संगति में तुम घूमने निकले थे, शीघ्र लौटना सम्भव न था।'

रमेश का चेहरा लज्जा से लाल हो गया। 'क्या मतलब ?'—

उसने पूछा ।

'मतलब तो कुछ भी नहीं, नवीन मुसकराया—मुझे तो शायद कुछ भी मालूम न होता; किन्तु प्रतिमा को अपनी उत्सुकता शान्त करने के लिए यहाँ कुछ पूछ-ताछ करनी पड़ी । इसलिए···।'

'इसलिए क्या ?'

'तुम्हारे सैर का साथी कौन था, यही नहीं, बल्कि यदि मैं भूल नहीं करता, तो प्रतिमा यह भी पता कर गई है कि उसकी आयु क्या है, रंग कैसा है, वस्त्र कौन से पहन रखे थे । चेहरे की बनावट कैसी है, स्वभाव में क्या गुण-दोष हैं, लिपस्टिक कौन-सी इस्तेमाल करती है ।'

'बस, रहने दो', रमेश बनावटी क्रोध से बोला—'मज़ाक भी सीमा के अन्दर ही भला मालूम देता है ।'

'मज़ाक ?' नवीन आश्चर्य की मुद्रा धारण करता हुआ बोला—'तुम अभी मेरे साथ चलो और स्वयं प्रतिमा से पूछ-ताछ कर लो । यदि तुम्हारे साथी के विषय में उसका ज्ञान पूर्ण न हो, तो बात है । खैर, छोड़ो इन बातों को । तुम्हें भाभी का पत्र मिल गया ?

हाँ, किन्तु समय बीतने पर ।'

'कैसे ?'

'कल तक तार द्वारा उसको जवाब चला जाना चाहिए था । अब उसे व्यर्थ इतनी लंबी यात्रा करनी पड़ेगी ।'

'उत्तर मैंने दे दिया था ।'

'तुमने ?'—रमेश ने आश्चर्य से पूछा ।

'इसका मतलब यह हुआ कि तारा कल यहाँ नहीं पहुँचेगी ।' रमेश

को ऐसा लगा कि कन्धों से मानो बोझा उतर गया हो।

'हाँ, आशा तो यही है, क्योंकि मैंने ज़रूरी तार दे दिया था। उन्हें अवश्य मिल गया होगा।' यह कहता हुआ नवीन उठ खड़ा हुआ—'लो भाई, अब मैं जाता हूँ। मुझे यूनिवर्सिटी में आज ज़रा जल्दी पहुँचना है। रविवार को तुम्हें प्रतिमा ने खाने के लिए बुलाया है। बाकी सारी बातें उसी दिन होंगी।

'रविवार को?'

हाँ, हाँ। बहाने नहीं चलेंगे। तुम्हें आना ही होगा। मेरे पास बहस के लिए समय नहीं।'

इससे पूर्व कि रमेश कुछ कहे, नवीन कमरे से बाहर था। रमेश ज्यों-का-त्यों बैठा रहा। तो तारा नहीं आ रही। यह भी खूब रहा। उसके आने से स्थिति में शायद विषमता उत्पन्न हो जाती। अब अपना काम तो वह जी लगा कर करेगा। किन्तु क्या उसके विचार टेढ़ा पथ तो नहीं पकड़ रहे थे? क्या उसके हृदय में तारा के प्रति उदासीनता का बीज नहीं फूट रहा था? यदि ऐसा हो, तो अनुचित बात थी। उसे सारी परिस्थिति पर ईमानदारी से विचार करना होगा। इसका मतलब तो यह हुआ कि उसे काम के सिवा शैला से कोई सरोकार नहीं रखना होगा। अब ऐसा ही होगा। उसने दोनों हाथों की मुट्ठियाँ ज़ोर से बाँधीं। अबसे वह उसके साथ केवल काम-काज-विषयक बातचीत ही करेगा। यह सोचता हुआ वह गुसलखाने में चला गया।

जब वह नहा-धोकर तथा कपड़े बदलकर बाहर निकला, तो शैला उसके कमरे के बाहरवाले भाग में कुरसी पर बैठी उस दिन का अखबार

पढ़ने में तन्मय थी। रमेश के आने की आहट सुनकर उसने अखबार से दृष्टि उठाकर रमेश की ओर देखा। उसके अंग-अंग पर मुसकान खेल रही थी। मधु-मिश्रित स्वर में बोली—'ओहो, तुम तो बनाव-शृङ्गार करने में स्त्रियों से भी अधिक कष्ट उठाते हो!'

रमेश का हृदय प्रसन्नता से फड़फड़ा उठा। भली प्रकार कंघी किये हुए अपने बालों पर हाथ फेरते हुए बोला—'वह कैसे?'

'इसका जवाब तो दर्पण ही दे सकता है।' अपनी सुन्दर दन्त-पंक्ति प्रदर्शित करती हुई वह खुलकर हँसी।

रमेश के कुछ ही क्षण पूर्व के किये गये सभी निश्चय न-जाने किधर छू-मन्तर हो गये। वह खिलखिला कर हँसा—तुम जितनी आकर्षक हो, उतनी ही वाक्पटु भी।'

कुछ लज्जा, किन्तु अधिकतर हर्ष से शैला का मुख ही नहीं, बल्कि ग्रीवा भी लाल हो गई। गरदन टेढ़ी करती हुई बोली—'अधिक खुशामद अच्छी नहीं होती। चलो, छोड़ो इन बातों को। चाय का समय हो रहा है और डाक्टर जीवन तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठे हैं।'

'डाक्टर जीवन! क्या आज भी चाय मुझे उनके साथ ही पीनी पड़ेगी?'

'उनकी इच्छा तो यही है। और जो उनकी इच्छा होती है, उसका टालना उचित तो है ही नहीं, शायद सम्भव भी न हो।'

'तो चलो, रमेश ने निराश स्वर में कहा—'यद्यपि मेरी इच्छा आज इस कमरे में तुम्हारे साथ चाय पीने की थी।"

'तो उस इच्छा का संवरण करना होगा। डाक्टर जीवन की इच्छा

के आगे वह कहाँ ठहर सकती है।'

'हाँ, यह तो मानना ही पड़ेगा।'

अब तक शैला उठ चुकी थी। 'चलो जल्दी करो।'

'चलो।'

रमेश और शैला एक साथ ही कमरे से बाहर निकल कर डाक्टर जीवन के कमरे की ओर बढ़ चले।

---

# सत्रहवाँ परिच्छेद

चाय का घूँट पीकर डाक्टर जीवन ने प्याली तिपाई पर रख दी और ज़रा मुसकराता हुआ कहने लगा—'रमेश, अर्थशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र की भाँति व्यापार-शास्त्र भी दिनों-दिन प्रगति-शीलता की ओर अग्रसर है। आरम्भ में व्यापार व्यक्तिगत रूप में हुआ करता था; पर आजकल व्यापार संस्थाओं द्वारा होता है। और सच पूछा जाय, तो आधुनिक युग में एकाकी व्यापारी बनकर सफलता प्राप्त करना है भी असम्भव। आजकल व्यापार के लिए केवल रुपये की ही आवश्यकता नहीं, बल्कि उसके लिए एक विशेष साँचे में ढला मस्तिष्क चाहिए।'

डाक्टर जीवन ने फिर प्याली उठा ली और उसे हाथ में पकड़े कहता चला गया—'व्यापार में सफलता प्राप्त करने के लिए केवल पैनी बुद्धि ही नहीं, दूरदर्शी कल्पना की भी आवश्यकता है। बालू के कण में गगनचुम्बी महल को देखने की शक्ति चाहिए। और यह सब गुण लेकर कोई नहीं जन्म लेता। इन्हें सीखना पड़ता है, सीखना।'

'आप बिलकुल ठीक कहते हैं।' रमेश बोला—'किन्तु मेरी मूर्खता तो देखिए, इनमें से एक भी गुण का स्वामी न होते हुए भी मैं व्यापार करने चला था!'

'हाँ, और घर से केवल दो-तीन हज़ार रुपया लेकर···।' डाक्टर जीवन ने टेढ़ी नज़र से रमेश को देखा।

'दो-तीन हज़ार कहाँ?' रमेश बीच ही में बोल उठा—'केवल पाँच सौ।'

'पाँच सौ!' डाक्टर जीवन के मुख पर आश्चर्य खेल उठा; किन्तु उसे छिपाकर वह खिलखिला कर हँसा—'सच कहते हो?'

'जी हाँ। लाख शुक्र है कि आप मुझे मिल गये।'

तब तक डाक्टर जीवन के हाथ में पकड़े हुए प्याले की चाय काफ़ी ठंडी हो चुकी थी। उसे वह एक घूँट में पी गया और फिर बोला—'इसीलिए मैं कहता हूँ कि व्यापारिक क्षेत्र में आने से पहले मनुष्य को कड़ा परिश्रम करने की ज़रूरत है, सो तुम्हें करना होगा!'

'जानता हूँ और मैं उससे डरता भी नहीं।'

'बहुत ठीक। तुमने उस नई कम्पनी का प्रास्पेक्टस देख लिया है।'

'जी हाँ।'

'अच्छा, शाम को उसके विषय में बातचीत होगी। अब मुझे एक जगह ज़रूरी पहुँचना है।'

रमेश उठ खड़ा हुआ—मैं शाम को फिर हाज़िर होऊँगा।'

'बहुत अच्छा।' डाक्टर जीवन ने बैठे-बैठे ही जवाब दिया।

रमेश उठकर बाहर चला गया। उसके बाहर निकलते ही शैला वहाँ आ पहुँची।

'तुमने कुछ सुना ?'—डाक्टर जीवन ने उसकी ओर देखते हुए पूछा।

'क्यों, क्या हुआ ?'

डाक्टर जीवन गम्भीर स्वर में बोला—'रमेश इधर केवल पाँच सौ रुपया लेकर आया था।'

'अच्छा !' शैला के स्वर में भी आश्चर्य था, 'चलो, अब क्या फ़र्क पड़ सकता है ?'

'फ़र्क यही कि अब जल्दी ही यहाँ से चलना होगा। कल इतवार है न ?'

'हाँ ?'

'कल की तैयारी करो।

'कल ?' एक दीर्घ निश्वास रोकते हुए शैला बोली—बहुत अच्छा।' यह कह कर शैला द्वार की ओर बढ़ने लगी।

'किधर जा रही हो ?'—डाक्टर ने पूछा।

'रमेश की ओर।'

'बहुत अच्छा।' डाक्टर मुसकराया।

वह बिना उत्तर दियें ही तीर की भाँति से कमरे से बाहर हो गई और सीधी रमेश के कमरे की ओर बढ़ने लगी; किन्तु द्वार के निकट जाकर वह रुक गई। कुछ क्षण वह सोच में डूबी रही, फिर उधर से मुँह मोड़ कर होटल के लॉन की ओर बढ़ गई। वहाँ सफेदे के वृक्ष के नीचे एक बेंच पड़ी थी, उस पर बैठ गई।

उसकी कल्पना उसके अतीत का सिंहावलोकन करने के लिए उसे विवश करने लगी। उसे वह दिन याद आया जब वह बम्बई में

जुहू के समुद्र तट पर सागर की लहर में अपनी व्यथा को खो देने में प्रयत्नशील थी। घर से वह संसार की यात्रा करने निकली थी। जो कुछ वह घर से लाई थी, वह तो उसने बम्बई के रेस-कोर्स में उड़ा दिया था। उसके पिता के पास धन की कमी न थी, इसलिए उसने अपने पिता को और रुपये के लिए तार दिया। इसके उत्तर में उसे पिता की मृत्यु की सूचना मिली। उसके पिता के वकील ने साथ ही यह भी लिखा था कि रुपया उसे विलायत लौट जाने पर ही मिल सकता है। हाँ, उसने राह खर्च के लिए दो-चार दिन में रुपया भेजने का वादा अवश्य किया था। ठीक उस समय उसकी डाक्टर जीवन से भेंट हुई थी। डाक्टर जीवन ने आकाश से उतरे देवदूत की तरह उसको अपना लिया था। डाक्टर बहुत ही स्नेहपूर्वक उसे अपने होटल में ले गये थे और चिन्ता को समुद्र की लहरों में डुबो देने का उससे अनुरोध भी किया था। तब से लेकर वह डाक्टर जीवन के साथ-साथ ही घूम रही थी, यहाँ तक कि अपने पिता की जायदाद के विषय में भी वह अभी तक लगभग उदासीनता दिखाये जा रही थी। कारण, एक तो डाक्टर जीवन के प्रति कृतज्ञता और दूसरे डाक्टर जीवन के व्यवसाय में पाया जाने वाला कौतुक तथा खतरा। आरंभ में अवश्य ही उसे डाक्टर जीवन का पथ अनुचित तथा भ्रान्त जँचा था; किन्तु पीछे उसकी रोमांसप्रिय प्रकृति को उस जीवन में एक रस-सा आने लगा था। आज तक जितने भी व्यक्ति उनके शिकार हुए थे, उनमें से किसी एक के साथ भी धाँधली करने पर उसे रत्ती-भर भी पश्चात्ताप न हुआ था; पर आज उसका मन उद्विग्न हो उठा था। उस दिन से उसे पहली बार पता चला था कि एक भोले-भाले सीधे

मनुष्य से धाँधली करना कितना कठिन है। लेकिन अब उसके लिए चारा ही क्या था। अब तो उसे डाक्टर जीवन के आदेशानुसार चलना ही होगा। पर यह उसका डाक्टर के लिए अन्तिम काम होगा ! यह सोचती-सोचती वह उठ खड़ी हुई। दो-चार पग इधर-उधर टहली और रमेश की ओर चल दी।

'चली आओ।' रमेश ने उसे इस तरह आवाज़ दी मानो उसकी प्रतीक्षा में ही बैठा हो।

वह चुपके से अन्दर चली गई। रमेश एक आरामकुरसी पर बैठा था। उसके अन्दर आने पर उठ खड़ा हुआ और शैला को कुरसी पर बैठने का संकेत किया। उसके बैठ जाने पर वह खड़ा-खड़ा ही बोला—'आज तो सिनेमा देखने को जी चाहता है।'

'कौन-सा चित्र देखने जा रहे हो ?'—शैला ने पूछा।

'आजकल 'हाउ ग्रीन वाज़ माई वैली" की बहुत धूम है। क्या वह ठीक नहीं रहेगा ?'

शैला ने एक दीर्घ निश्वास लिया। उसकी 'वैली' में भी उसके संसार में भी, कभी कितनी हरियाली थी ! और कौन जाने रमेश के संसार में भी कितनी हरियाली रही हो ! पर आज, कारण कुछ भी हो, वह घृणित कार्य करने में तत्पर थी ! और रमेश घर से दूर मारा-मारा फिर रहा था !

शैला को चुप देखकर रमेश ने फिर पूछा—'बोलतीं क्यों नहीं ? चुप क्यों हो गईं ?'

शैला मानो स्वप्न से जागकर बोली—'हाँ, देख आओ, ठीक रहेगा !'

'तुम्हें भी चलना होगा।'

'मुझे? क्षमा न कर दोगे?'

क्यों?'

'इसलिए कि उस चित्र को देखकर शायद मैं अपने-आपको सँभाल न सकूँ!'

'क्या बहुत करुणाजनक चीज़ है?'

'नाम से तो ऐसा ही मालूम पड़ता है?' खैर, चलो।'

'तो फिर झटपट तैयार हो आओ।'

शैला उठकर अपने कमरे की ओर चली गई और कमरे का द्वार बन्द करके कुरसी पर बैठ गई। बैठते ही उसके नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग गई।

———

# अठारहवाँ परिच्छेद

चित्र 'हाउ ग्रीन वाज़ माई वैली' का प्रदर्शन कलकत्ता के लाइट-हाउस में हो रहा था। जब शैला और रमेश वहाँ पहुँचे, तो हाल खचाखच भरा हुआ था। किन्तु रमेश ने टिकट बहुत पहले से खरीद रखे थे, इसलिए उनके लिए उन दोनों की कुरसियाँ सुरक्षित पड़ी थीं। लाइट हाउस का बड़ा हाल बिजली की कोमल ज्योति से प्रकाशमान था। उस ज्योति द्वारा छायाचित्र बनाते हुए वे अपने स्थानों पर जा बैठे।

चित्र आरम्भ होने में अभी लगभग दस मिनट की देरी थी। रमेश ने अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। पूर्वी और पश्चिमी फैशनों का

अद्‌भुत जमघट वहाँ उसे दिखाई पड़ा। अधिकतर दर्शकों के चेहरों पर उसे आनन्द खिलता हुआ दीख रहा था। उनसे दृष्टि हटा कर उसने शैला के मुख की ओर देखा। लाख छिपाने पर भी उसके चेहरे पर की करुण रेखाएँ छिप न पाई थीं। वह क्यों? क्या आनेवाले चित्र के कारण ही वह चिन्तित थी या अतीत की कुछ स्मृतियाँ उसके हृदय में हलचल छेड़ रही थीं। कौन जाने उसके जीवन में कितनी व्यथा रही हो! यह सोचते-सोचते उसे एकाएक ख्याल आया कि वह शैला के विषय में कुछ भी न जानता था। वह वास्तव में कौन थी, कहाँ की रहने वाली थी और उसके जीवन में क्यों आ पड़ी थी? उसका जीवन भी कितना टेढ़ा-मेढ़ा होकर चल रहा था! वह कहाँ पहुँचेगा? कहीं पहुँचेगा भी या नहीं?

ठीक इसी समय हाल की ज्योति क्षीण से क्षीणतर होती हुई बुझ गई और परदे पर चित्रों का प्रदर्शन आरम्भ हो गया। शुरू में खबरों के चित्र दिखाये गये, जिनमें अधिकतर द्वितीय महायुद्ध की कुछ छोटी-मोटी घटनाएँ मुख्य थीं। फिर असली चित्र आरम्भ हुआ। चित्र के आरम्भ होते ही हाल में शान्ति छा गई। और ज्यों-ज्यों कहानी आगे बढ़ती गई, लोगों के हृदयों को द्रवित करती गई। रमेश को ऐसा लगा, जैसे शैला ने एक-दो बार अपने आँसू भी पोंछे हों। इसमें आश्चर्य की भी कोई बात न थी। क्योंकि वह अपने आँसू भी कठिनता से रोक पा रहा था। चित्र की करुणा ने लोगों पर इतना अधिक आधिपत्य जमा लिया था कि इंटरवल हो जाने पर भी लगभग आध मिनट तक हाल शान्त रहा। फिर धीरे-धीरे लोगों के बोलने का शब्द आना शुरू हुआ।

'चित्र पसन्द आया ?'—रमेश ने शैला से पूछा।

'पसन्द आये या न आये', उसने जवाब दिया—'किन्तु बात वही हुई है, जिससे मैं डरती थी।'

'क्या ?'

'यही कि यह चित्र मेरे हृदय में घाव करता जा रहा है।'

'क्यों ?'

'इसका जवाब एक लम्बी कहानी है', शैला ने कहा—'जिसे सुनाने की न मुझ में शक्ति है और जिसे सुनने का न तुम्हारे पास शायद समय होगा, न तो धैर्य।'

'यदि तुम्हारा अनुमान ठीक न हो ?'—रमेश ने शैला को ध्यान-पूर्वक देखते हुए कहा—'और मैं उसे सुनने के लिए अनुरोध करूँ तो ?'

'तो भी शायद मैं उसे न सुना सकूँ।'

'तो यह मेरा दुर्भाग्य है, और क्या कह सकता हूँ।'

शैला मुसकराई—'देखो, फिर कल्पना का शिकार होने जा रहे हो, सँभलो। आकाश को छोड़कर संसार में उतरो।'

ठीक उस समय इंटरवल समाप्त हो गया और चित्र शुरू हो गया। चित्र समाप्त होने पर जब वे सिनेमा-हाल से बाहर निकले, तो दोनों के मन भारी थे। युद्ध के कारण अर्द्ध-प्रकाशित सड़कों पर राह टटोलते हुए वे अपने होटल की ओर चल पड़े। रास्ते में उन्होंने कोई बात नहीं की।

वहाँ पहुँचने पर रमेश की ज़बान खुली—'कल शायद भेंट न हो सके।'

'क्यों ?'

'मुझे एक मित्र के यहाँ खाना खाने जाना है।'

'खाना तो दोपहर को होगा।'

'हाँ, किन्तु मेरा विश्वास है कि वह कल मुझे सोते से जगा कर ले जायगा। वह मेरा बहुत ही प्रिय सुहृद है।'

इसके अनन्तर दोनों एक-दूसरे का अभिवादन करके अपने-अपने कमरे की ओर चल दिये। शैला-तो उसी समय अपने कमरे में घुस गई। पर रमेश होटल के लॉन की ओर बढ़ गया। आकाश में पूर्णिमा का चाँद टिमटिमाते हुए तारों से घिरा चमक रहा था। उसने दीर्घ निःश्वास छोड़ कर चाँद की ओर देखा। फिर लॉन में टहलने लगा। उसके मस्तिष्क में भावों का जमघट इस बेढंगेपन से लग रहा था कि कुछ भी सोचना उसके लिए सम्भव नहीं बन पड़ रहा था। कई बार उसने अपने विचारों को सिलसिलेवार बाँधने की कोशिश की, पर व्यर्थ। आखिर ऊब कर वह अपने कमरे की ओर चल पड़ा।

उसने कमरे की बिजली की बत्ती अभी जलाई ही थी कि होटल का नौकर आ पहुँचा।

'क्या है?'—रमेश ने पूछा।

'आपकी एक चिट्ठी थी। मैं उस तिपाई पर रख गया था।'

रमेश ने बढ़कर चिट्ठी उठा ली। उसे देखा। वह नवीन के पते पर आई हुई थी।

'यह कौन दे गया है?'

'एक चपरासी दे गया था, साहब!'

'बहुत अच्छा,' कहकर रमेश ने पत्र खोला। इस बीच नौकर वहाँ से खिसक गया। चिट्ठी उसके मामा की थी। उसमें लिखा था—

"तारा से तुम्हारा पता पूछकर तुम्हें पत्र लिख रहा हूँ। क्या जो कुछ तुम कर रहे हो, वह उचित है। पहुँच के दो शब्दों का भी क्या मैं अधिकारी नहीं? आशा है, तुम अच्छी तरह से होगे। एक अनुरोध करने जा रहा हूँ। यदि किसी भी चीज़ की तुम्हें आवश्यकता हो, तो मुझे निःसंकोच लिखना। आत्माभिमान की भी एक सीमा होती है।"

उसने पत्र को दो बार पढ़ा और फिर उसे तिपाई पर रख दिया। उसके मामा की स्नेह-स्निग्ध मूर्ति उसके नेत्रों के सामने नाच गई। इतने महान मामा भी किसे मिलेंगे। पर उसका दुर्भाग्य तो देखो, वह उनसे भी दूर रहने पर विवश था। उनसे तो क्या, वह तो सभी घर वालों से दूर आ पड़ा था। यह ठीक है, उसके माता-पिता ने उसे घर छोड़ने पर विवश किया। पर अपने जाने में जो कुछ वे चाहते थे, वह उसकी भलाई के हेतु ही तो था। इसमें उसका अपना दोष भी तो कम न था। वह उन्हें भी भुला बैठा था। उसे कलकत्ता पहुँचते ही पिता को पत्र लिखना चाहिए था। किन्तु अब पत्र लिखते हुए उसे संकोच हो रहा था। पर अपने मामा को तो उसे लिखना ही होगा। यदि अभी उसने न लिखा, तो शायद फिर कई दिन तक लिख न सके। यह सोचता-सोचता वह लिखने वाली मेज़ पर जा बैठा। पैड और क़लम निकाल कर कागज़ पर अपना पता लिखा, उस दिन की तारीख दी। फिर सोचने लगा कि पत्र कैसे आरम्भ करे? अब तक चुप्पी साधे रहने का क्या बहाना गढ़े? किन्तु उसे कुछ भी न सूझता था। उसने पत्र को कई तरह से आरम्भ किया। पर उसे कोई भी ढंग पसन्द न आया। एक के पीछे एक उसने अर्ध-लिखित कई

शीट रद्दी की टोकरी में फेंके। इसके अनन्तर वह खीझकर उठ बैठा। पत्र वह कल लिखेगा, यह सोचता हुआ वह दो-एक पग कमरे में चला और तब आराम कुरसी पर अधलेटा-सा जा बैठा। उस दिन के देखे हुए चित्र की घटनाएँ उसके नेत्रों के सम्मुख खेलने लगीं। इसी अवस्था में पड़े-पड़े उसके नेत्र मुँद गये और वह अर्ध-सुषुप्ति की गोद में जा लेटा।

---

# उन्नीसवाँ परिच्छेद

रमेश का अनुमान गलत निकला। रविवार को उसे लेने के लिए नवीन नहीं आया। इसलिए वह धीरे-धीरे उनके यहाँ जाने की तैयारी करने लगा। जिस समय वह होटल से बाहर निकला, तो दस बज चुके थे। बाहर जाते हुए उसने एक दृष्टि डाक्टर जीवन के कमरे की ओर दौड़ाई, पर उसका द्वार बन्द था। बालीगंज की ट्राम से सवार होकर वह नवीन के घर जा पहुँचा।

नवीन के मकान की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए उसके हृदय में हलकी-सी धड़कन होने लगी। न-जाने प्रतिमा ने किस दृष्टि-कोण से उसके और शैला के सम्बन्ध को देखा होगा और उसे किन-किन प्रश्नों का उत्तर देना होगा। यह कि प्रतिमा के कुछेक व्यंग्यात्मक प्रश्नों द्वारा उसे थोड़ा-बहुत लज्जित अवश्य होना पड़ेगा, यह तो वह जानता था, पर कहीं वह बात को इतना अधिक तूल न दे दे कि उसके लिए वहाँ ठहरना ही दूभर हो जाय। इसी से वह डरता था। किन्तु जब वह ऊपर पहुँचा तो उसका भय निर्मूल सिद्ध हो गया, क्योंकि नवीन अकेला न था। उसके पास एक अतिथि भी बैठा था।

'आओ रमेश', नवीन प्रसन्नता प्रदर्शित करता हुआ उठ खड़ा हुआ, 'ग्यारह बजे आ धमके हो! खैर, शुक्र है, आए तो हो। यदि जल्दी आ जाते, तो क्या था! हाँ, इनसे तो मिल लो। ये मेरे मित्र गगन भट्टाचार्य हैं।'

रमेश ने उनको हाथ जोड़कर नमस्कार किया। प्रति-नमस्कार करते हुए भट्टाचार्य मुसकराते हुए बोले—'उन्हें भी तो कुछ कहने दो, नवीन!'

'इसकी क्या पूछते हैं आप," रमेश बोला—'यह दूसरे को कहाँ बात करने देता है।'

'अच्छा, अच्छा! बहुत शोर मत करो। कला पर इनकी बातें ज़रा सुनो। क्या मैंने तुम्हें बताया नहीं कि हमारे उदीयमान चित्रकारों में गगन सर्वोपरि हैं। चित्रकार क्या आप मूर्तिकार भी बहुत ही उच्चकोटि के हैं।'

इससे पूर्व कि रमेश कुछ कहे, भट्टाचार्य बोले—'इनकी बातों पर मत जाइये रमेश बाबू! चित्रकार और मूर्तिकार बनना 'तो बहुत दूर की चीज़ है। हाँ मैं ललित-कलाओं का एक क्षुद्र विद्यार्थी अवश्य हूँ। यदि कभी आप मेरे स्टूडियो में पधारें, तो मुझे विशेष हर्ष होगा।'

'आपका स्टूडियो कहाँ है?'—रमेश ने पूछा।

'ग्रीक रो में।'

'मैं अवश्य आऊँगा।'—रमेश ने कहा।

'आज ही क्यों न चलें?'—नवीन बीच में बोल उठा।

'बहुत अच्छा, आज ही ठीक रहेगा, यदि इन्हें असुविधा न हो।'—रमेश बोला।

'मुझे ? मेरे लिए इससे अधिक प्रसन्नता की बात क्या हो सकती है ?'—भट्टाचार्य ने कहा।

खाने के अनन्तर वे तीनों भट्टाचार्य के स्टूडियो जायँगे, वह निश्चित हो गया। फिर कला-सम्बन्धी चर्चा आरम्भ हो गई।

'आप किस स्कूल के अनुयायी हैं ?'—रमेश ने पूछा।

'मैं किसी वाद-विशेष को मानने वाला नहीं।' भट्टाचार्य ने जवाब दिया—'पर क्या आपको किसी विशेष स्कूल के प्रति मोह है ?'

'सच पूछिए तो मेरा चित्रकला का ज्ञान अधूरा है,' रमेश गम्भीर स्वर में कहने लगा—'हाँ, इतना मैं जानता हूँ कि आरम्भ में चित्रकला के पुनरुद्धार के जो प्रयत्न हुए वे ठीक राह पर नहीं चल रहे थे !'

'अर्थात् ?' भट्टाचार्य ने धीरे से पूछा और प्रश्नात्मक दृष्टि से चीरते हुए रमेश की ओर देखने लगे।

रमेश कहने लगा—'इस दिशा में पहला प्रयत्न राजा रवि वर्मा ने किया। उनके चित्रों की धूम भी खूब रही; पर जहाँ तक मैं समझता हूँ, उनके चित्रों में उनके व्यक्तित्व की छाप कम तथा पाश्चात्य टेकनीक की छाप अधिक है। उनमें सौन्दर्य की अपेक्षा भड़कीलापन ज्यादा है।'

'मैं मानता हूँ, भट्टाचार्य ने सन्तोष की एक साँस ली—'और दूसरा प्रयत्न ?'

'तथाकथित बंगाल-स्कूल। उनके चित्रों की बड़ी-बड़ी स्वप्निल आँखें, खड्ग की भाँति तीखी नाक, धनुष की तरह बने हुए ओठों ने कुछ दिन तक लोगों को खूब लुभाया; पर यह जादू अधिक देर न

चल सका।'

'क्यों?' अब की बार प्रश्न नवीन की ओर से आया था।

'इसलिए कि इन चित्रों में भी पश्चिम से उधार माँगी हुई टेकनीक की छाप है। इनकी सुन्दरता स्वाभाविकता की सीमा का अतिक्रमण कर गई है और मुझे तो ऐसा जँचता है कि इस स्कूल के चित्र प्राणहीन हैं।'

'बहुत खूब।' भट्टाचार्य प्रभावित स्वर में बोले—'क्या आप अवश्य ही मेरा स्टूडियो देखना चाहते हैं?'

'क्यों, क्या बात है?'—नवीन ने पूछा।

'मुझे इनसे डर लगने लगा है।'—भट्टाचार्य ने उत्तर दिया।

रमेश खिलखिलाकर हँसा 'पर अब तो ये दोष दूर होते जा रहे हैं।'

'इस दिशा में कौन प्रयत्नशील हैं?'

'कला को इन दोषों से मुक्त करने के लिए जो कलाकार विशेष-रूप से प्रयत्नशील हैं, उनमें मेरी दृष्टि में अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का स्थान बहुत ऊँचा है।'

भट्टाचार्य उछल पड़े—'आप बिलकुल ठीक कहते हैं। मैं तो हैरान हूँ कि आप यहाँ व्यापार करने क्यों आये हैं। आपको तो हमारी लाइन पकड़ना चाहिए था!'

रमेश थोड़ा मुसकराया और बोला—'इसमें दोष मेरा नहीं मेरे भाग्य का है।'

'भाग्य का?' नवीन तीखे स्वर में बोला—'तुम्हारे जैसे लोग ही तो···।'

ठीक इसी समय नौकर ने कमरे में आकर भोजन तैयार हो जाने की सूचना दी। अपना वाक्य बिना समाप्त किये ही नवीन उठ खड़ा हुआ और उन्हें साथ लेकर चल दिया।

प्रतिमा खाने वाली मेज़ के इर्द-गिर्द चक्कर काट रही थी। कभी किसी गिलास को ठीक ढंग से रखती, कभी मेज़ की चादर की सलवटें ठीक करती थी। उन्हें आते देख कर उसने मुसकराकर उनका स्वागत किया।

'नमस्कार, बहूदी!' रमेश ने कहा—'आज क्या क्या खाने को मिलेगा?'

'नमस्कार भैया! प्रतिमा ने शुद्ध हिन्दी में जवाब दिया—'मिलेगा तो बहुत-कुछ, पर आपको शायद पसन्द कुछ भी न आये।'

'क्यों?'

'इसलिए कि जिस के हाथ का बना आपको भाता है वह यहाँ से बहुत दूर बैठी है।' यह कहते हुए प्रतिमा ने तिरछी नज़र से रमेश की ओर देखा। रमेश थोड़ा लज्जित होकर केवल मुसकरा पड़ा। इतने में नौकर खाना ले आया और वे तीनों खाने के लिए बैठ गये। प्रतिमा उस दिन भी उनके साथ न बैठी। उस दिन का खाना बंगाली तथा पंजाबी दोनों ढंग का था, पर था निरामिष ही। खाने की वस्तुओं पर एक नज़र दौड़ाते हुए रमेश बोला—'भाभी, भट्टाचार्य जी के लिए तो आपको मांस-मछली आदि बनानी चाहिए थी।'

'मेरे लिए! शिव, शिव!'—भट्टाचार्य हँसने लगे।

'क्यों, आप भी निरामिषभोजी हैं क्या?'

'यह बहुत ही कुलीन ब्राह्मण हैं रमेश! यह मांस मछली को

छूते तक नहीं।'--नवीन ने कहा।

'यह बात तो नहीं', भट्टाचार्य बोले—'विलायत जाने से पहले तो मैं मांसादि खा लिया करता था; पर वहाँ पर मुझे इनसे घृणा हो गई।'

'क्या आप विलायत में भी निरामिषभोजी रहे?'—रमेश ने पूछा।

'नहीं, किन्तु यहाँ आकर मैं मांसादि के निकट नहीं गया।'

'मेरे मामा ने भी ठीक ऐसा ही किया था।'—रमेश ने कहा।

'अच्छा! वे कितने दिन विलायत रहे?'

'कोई आठ नौ वर्ष। बनकर तो बैरिस्टर आये थे: पर अब व्यापार करते हैं।'

'अरे, कहीं बैरिस्टर सोमेश ही तो आपके मामा नहीं?'

'हैं तो वही। आप उन्हें कैसे जानते हैं?'—रमेश ने आश्चर्य से पूछा।

'उन्हें? मैं तो उन्हें गुरु की भाँति मानता हूँ। वे इधर आकर मुझसे बिना मिले कभी नहीं जाते।'

इसके अनन्तर भी भट्टाचार्य काफी देर तक सोमेश के गुण गाते रहे। रमेश का हृदय हर्ष से खिल उठा। उसके मामा की ख्याति इतनी फैली हुई थी, वह यह नहीं जानता था।

# बीसवाँ परिच्छेद

खाना खाकर भट्टाचार्य महोदय रमेश और नवीन को अपने स्टूडियो में ले आये। ग्रीक रो में भट्टाचार्य के पिता का एक बहुत बड़ा मकान था। उसी के एक काफी लम्बे-चौड़े कमरे को कलाकार ने स्टूडियो का रूप दे दिया था। कमरे में चारों ओर चित्र बिखरे थे और मूर्त्तियाँ बेतरतीब इधर-उधर पड़ी थीं। मूर्त्तियों और चित्रों के मध्य में चार-पाँच छोटी-छोटी गद्देदार कुरसियाँ रखी थीं। नवीन और भट्टाचार्य उनमें से दो पर बैठ गये।

'आप भी बैठिये।'—भट्टाचार्य ने अपने लम्बे तथा कोमल बालों पर अपनी गोरी पतली अँगुलियाँ फेरते हुए कहा।

'नहीं, मैं ज़रा स्टूडियो में घूमूँगा।' रमेश ने सिर हिलाते हुए जवाब दिया और एक-एक पग रखता हुआ चित्रों और मूर्त्तियों के निरीक्षण में निमग्न हो गया। भट्टाचार्य की दृष्टि रमेश के साथ-साथ घूम रही थी। रमेश के मुख के एक-एक हाव-भाव को अतीव दत्तचित्त होकर वह देख रहा था।

लगभग पन्द्रह-बीस मिनट तक रमेश एक-एक मूर्त्ति और चित्र का रसास्वादन करता हुआ एक वृद्ध पुरुष के चित्र के सामने आ खड़ा हुआ, जो एक कोने में छिपा-सा पड़ा था। चित्र एक कुरूप पुरुष का था, जिसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी। मस्तक पर न केवल बल ही पड़े हुए थे, बल्कि वहाँ पर हरी-हरी नाड़ियाँ भी उभरी हुई थीं। नेत्रों के नीचे

काली लकीरें पड़ चुकी थीं और उनमें ज्योति की क्षीणता चित्र में साफ झलकती थी। यह कि उन नेत्रों के स्वामी में पैनी पकड़ थी, चित्रकार दिखाने में पूर्ण रूप से सफल हो गया था। रमेश बहुत देर खड़ा उस चित्र को एकटक निहारता रहा। उसने फिर एक दीर्घ निःश्वास लिया और चित्र से मुख मोड़कर भट्टाचार्य की ओर देखा। खूब चित्र बनाया है आपने, पर आप इसे छिपाकर क्यों रखते हैं?'

'इसलिए कि कोई इसे छीनकर न ले जाय। मुझे इस चित्र से बहुत मोह है।

'आपका मोह यथार्थ है। यह चित्र नहीं, बल्कि स्फूर्त्ति की विद्युत् का एक उज्ज्वल अंश है। चित्र न केवल यह प्रदर्शित करता है कि यह संसार असार है, बल्कि इससे यह भी झलकता है कि बुढ़ापा और मृत्यु डरने वाली चीज़ें नहीं। मुझे तो ऐसा लग रहा है, जैसे चित्र बोलकर कह रहा हो—मैंने बहुत आशाओं और आकांक्षाओं की पूर्त्ति देख ली है। अब तो मुझे यह देखना है कि उस पार क्या है। इसलिए मृत्यु मेरे लिए हर्षपूर्ण महोत्सव होगा।'

भट्टाचार्य और नवीन दोनों उछल पड़े। 'रमेश भैया, हम नहीं जानते कि तुम क्या कह रहे हो।'—नवीन बोला।

'मेरे ऐसे तुच्छ कलाकार को आज आपने कृतकृत्य कर दिया।' भट्टाचार्य कहने लगे—'मुझे प्रसन्नता इस बात से तो हुई है कि मेरा प्रयास आपको भाया है; पर जिस बात से मुझे अधिक सन्तोष हुआ है, वह यह है कि अपने जिस चित्र को मैं कुछ समझता था वह एक पैने पारखी की दृष्टि में भी जँच जाय।'

'पारखी की बात तो छोड़िये; किन्तु इतना मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि आपका भविष्य बहुत ही महान और उज्ज्वल है।'

'धन्यवाद!' चित्रकार ने कहा—'पर क्या आप जानते हैं कि मुझे इस कला के संसार में प्रवेश करने के लिए किससे अत्यधिक प्रोत्साहन मिला है?'

'किससे?'

'आपके मामा से।'

'मेरे मामा से?'—रमेश ने आश्चर्य से भट्टाचार्य की ओर देखा।

'हाँ।' भट्टाचार्य, जो अब तक कुरसी पर बैठा था, उठ खड़ा हुआ। उसने अपने बड़े-बड़े ज्योतिर्मय नेत्रों द्वारा एक बार रमेश की ओर देखा और फिर नवीन की ओर देखता हुआ कहने लगा—'नवीन, तुमको भी शायद यह पता नहीं कि मैं इंग्लैंड बैरिस्टरी पास करने के लिए भेजा गया था। मेरे पिता ने मेरे लिए जो संस्था चुनी, सोमेश बाबू भी वहीं से पढ़कर निकले थे। पुराने और नये विद्यार्थियों के एक समारोह में सौभाग्य से मेरी उनसे भेंट हो गई। उनकी सौम्य मूर्त्ति ने मुझे इतना अधिक आकृष्ट किया कि उनके यहाँ मेरा आना जाना बहुत अधिक हो गया। अपनी ओर से तो मैं बहुत यत्न करता; परन्तु कानून-जैसे शुष्क विषय में मेरा मन नहीं लगता था।'

'आप की रुचि किस ओर थी?'—रमेश ने पूछा।

'चित्रकला तथा मूर्त्तिकला की ओर। किन्तु मुझ में इतना साहस न था कि बैरिस्टरी को छोड़कर इन्हें अपना लूँ। इसलिए समझ में नहीं आता था कि क्या करूँ। मेरा मन इतना अशान्त और उद्विग्न हो उठा कि मैं घंटों एकान्त में बैठकर अपने भाग्य को कोसने लगा।

आखिर एक दिन बैठे-बैठे मुझे सूझा कि अपनी समस्या को सोमेश बाबू के पास क्यों न ले जाऊँ। मैं उसी समय उठकर उनकी तरफ चल दिया।' यह कहते-कहते भट्टाचार्य ने जेब से सिगरेट-केस निकाला, एक सिगरेट रमेश की ओर बढ़ा दी और एक स्वयं ले ली। नवीन सिगरेट नहीं पीता था। सिगरेट को सुलगाकर भट्टाचार्य फिर कहने लगे "मुझे ठीक याद है कि जब मैं सोमेश बाबू के कमरे में पहुँचा, तो वे एक गद्देदार कुरसी पर बढ़िया शाल लपेटे बैठे एक बड़ी सी संस्कृत की पुस्तक के पृष्ठ उलट रहे थे। शायद श्रीमद्भागवत थी। मुझे देखकर मुसकराये और बोले—'नमस्कार!' मैं घबराहट और उतावली के कारण उनका अभिवादन करना भी भूल गया था। मैंने लज्जित होकर उनको नमस्कार किया और उनके आदेशानुसार सामने वाली कुरसी पर बैठ गया। इससे पहले कि वे कुछ पूछें मैंने अपनी समस्या उनके सामने रख दी। एक मिनट तक वे सोच में डूबे रहे फिर शान्त स्वर में बोले—'तुम्हारे लिए यही उचित है कि तुम बैरिस्टरी छोड़कर चित्रकला और मूर्त्तिकला की आराधना करो।' मैंने निराश स्वर में कहा—'यह तो ठीक है; किन्तु मेरे पिताजी को कौन मना सकता है। आपको शायद मालूम नहीं कि मुझे बैरिस्टर देखने की उनकी प्रबल इच्छा है। वे समझते हैं कि जिस व्यवसाय में उन्होंने आयु बिता दी, वह परिवार में अवश्य रहना चाहिए।' यह सुनकर सोमेश बाबू खुलकर हँसे और आत्म-विश्वास के साथ बोले—'तुम इसकी चिन्ता न करो। उन्हें मैं मना लूँगा। तुम कल से बैरिस्टरी छोड़कर चित्रकला और मूर्त्तिकला का अध्ययन आरंभ कर दो।' मैंने ज़रा आश्चर्य से कहा—'किन्तु आप तो उन्हें जानते नहीं।'

'तुम्हें इससे क्या, मुझे उनका पूरा पता एक कागज़ पर लिखकर दे जाओ और अपना काम करो।' "

'क्या उन्होंने आपके पिता जी को मना लिया ?'—रमेश ने पूछा।

'हाँ जी,' भट्टाचार्य फिर कहने लगा। 'पर कैसे ? यह रहस्य मैं आज तक भी नहीं सुलझा सका। मैं पिता जी से भी पूछ चुका हूँ; किन्तु वे हँसकर टाल देते हैं। खैर, मैंने दूसरे दिन बैरिस्टरी छोड़कर चित्रकला का अध्ययन आरम्भ कर दिया; किन्तु मुझे विश्वास था कि खबर पाते ही मेरे पिता मुझे पत्र द्वारा खूब डाँटेंगे। इसलिए मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब कुछ दिनों बाद मेरे पिता का पत्र मिला जिसमें उन्होंने सहर्ष मुझे बैरिस्टरी छोड़ने तथा अपने विषयों का अध्ययन करने की आज्ञा दे दी थी। मैं पत्र लेकर भागता हुआ सोमेश बाबू के के पास पहुँचा; किन्तु वे पहले से ही सब कुछ जानते थे। उनके पास भी पिताजी का पत्र पहुँचा हुआ था। मैंने कहा—'आपका धन्यवाद मैं किन शब्दों द्वारा करूँ यह समझ में नहीं आता। किन्तु यह तो बतलाइए कि आपने पिताजी को लिखा क्या था ?' वे हँसने लगे और कुछ जवाब न दिया।'

'उनकी क्या पूछते हैं आप,' रमेश प्रशंसात्मक स्वर में बोला—'उनके तो ढंग ही निराले हैं। प्रत्येक समस्या पर उनका अपना दृष्टिकोण होता है।'

'हाँ, और वह न केवल मौलिक ही होता है बल्कि पूर्ण रूप से वांछनीय भी।'

---

# इक्कीसवाँ परिच्छेद

जब रमेश भट्टाचार्य के स्टूडियो से निकल कर अपने होटल की ओर चला तो चारों ओर सन्ध्या फैल गई थी। अपने मामा और भट्टाचार्य की बातें सोचते सोचते उसे हर्ष हो रहा था। वह यूँ भी प्रसन्न था कि कलकत्ता में न केवल वह नौकरी पाने में सफल हो गया था, बल्कि वह नये-नये मित्र भी बनाता जा रहा था। इसलिए जब वह होटल के अपने कमरे में पहुँचा, तो उसका हृदय पवन-सा हलका था। कमरे की बत्ती जलाकर वह एक कुरसी पर बैठ गया। जेब से एक सिगरेट निकाल कर उसे सुलगा कर उसके कश खींचने लगा। इतने में धीरे से किसी ने उसका द्वारा खटखटाया। शैला होगी, उसने सोचा।

'चले आइये' उसने कहा और चैतन्य होकर बैठ गया।

आधे क्षण में ही उसके सामने होटल का क्लर्क आकर खड़ा हो गया। उसके हाथ में एक बन्द लिफाफा था। उसने उसे रमेश के हाथ में पकड़ा दिया और बोला—'डाक्टर जीवन दे गये हैं।'

इस आशा में कि क्लर्क उसे लिफाफा देकर लौट जायगा, रमेश ने अर्थ-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा; पर वह ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा। रमेश समझ गया कि डाक्टर जीवन के पत्र में होटलवालों के स्वार्थ की बात कुछ अवश्य होगी, इसलिए उसके सामने ही उसने लिफाफा खोल डाला और पढ़ने लगा। उसमें लिखा था :—

"प्रिय रमेश ! व्यापार के सिलसिले में मुझे एकाएक बम्बई से बुलावा आ गया है, इसलिए मैं आज दोपहर की गाड़ी से जा रहा हूँ। कृपया होटल का बिल चुका कर अति शीघ्र तुम भी बम्बई पहुँचो।"

पत्र पढ़कर रमेश थोड़ा चकित हुआ, फिर उसने लिफाफा उठाकर पढ़ा। उसके नाम के पीछे प्राइवेट सेक्रेटरी भी लिखा था। रहस्य क्या है उसे पूरी तरह समझ नहीं आया। इसलिए उसने क्लर्क से पूछा—'क्या मिस शैला भी डाक्टर जीवन के साथ चली गई हैं ?'

'जी।'

'क्या वे अपना सब सामान ले गये हैं ?'

'जी हाँ।'

'क्या अपना बम्बई का एड्रेस आपको दे गये हैं ?'

'हमें ?' क्लर्क ने आश्चर्य से रमेश की ओर देखा, प्राइवेट सेक्रेटरी आप हैं उनके, इसलिए आपको ऐड्रेस देना उचित था, न कि हमें।'

रमेश ने कुछ जवाब न दिया। कुछ देर सोच में डूबा रहा, फिर बोला—'आप अपना बिल लाइए।'

बिल लाने में उसे दो चार मिनट लगेंगे, इसलिए थोड़ा सोचने का समय मिल जायगा, जिससे शायद वह रहस्य सुलझा सके। क्लर्क के चले जाने पर रमेश ने सिगरेट ऐश-ट्रे में मसल दिया और उठकर कमरे में टहलने और सोचने लगा। बिल मैं चुका दूँ और बम्बई पहुँच जाऊँ—उस जगह जिसका पता देना मुझे ज़रूरी नहीं समझा गया। किन्तु मैं बिल क्यों चुकाऊँ ? वे खुद क्यों नहीं चुका कर गये ? इतने में क्लर्क बिल लेकर आ गया। बिल साढ़े चार सौ रुपये

का था। विद्युत् की रेखा की नाईं रमेश के मस्तिष्क में एक विचार कौंध गया। अरे, कल ही तो मैंने डाक्टर जीवन के पूछने पर बताया था कि मैं पाँच सौ रुपये लेकर व्यापार करने चला था। एक क्षण में ही वह समझ गया कि वह कितने बड़े छल का शिकार बन गया था। कलकत्ता में जेबकतरे होते हैं; यह तो उसे बताया गया था; किन्तु इतने सुसंस्कृत ठग भी होते हैं, यह वह न जानता था। डाक्टर जीवन-जैसा पुरुष और यह काम! और शैला? वह फिर उलझन में पड़ गया। क्लर्क अभी तक खड़ा था। रुपया देने के सिवा और चारा ही क्या था; क्योंकि इस बात से वह कभी इनकार नहीं कर सकेगा कि वह डाक्टर जीवन का प्राइवेट सेक्रेटरी नहीं है। इसलिए उसके ठगे जाने की कहानी को होटलवाले कभी नहीं मानेंगे।

उसने क्लर्क से कहा—'आप दफ्तर में चलिए, मैं रुपया लेकर अभी आता हूँ।

'बहुत अच्छा।' क्लर्क चला गया।

उसके चले जाने के अनन्तर रमेश ने अपना सूटकेस खोला और उसमें से अपनी पूँजी निकाल ली। सौ-सौ रुपये के पाँच नोट थे। इसमें से साढ़े चार सौ दे देने पर उसके पास पचास रुपए बच जायँगे। इनके अतिरिक्त बीस-पचीस रुपए उसकी जेब में भी थे। लगभग दो सौ रुपया वह फुटकर खर्च के लिए लाया था, उसमें से वही बच रहे थे। इन सत्तर-अस्सी रुपयों के बल पर वह कलकत्ता में कैसे और कहाँ रहेगा। पर कुछ तो करना ही होगा। वह अपने भाग्य के बाँकपन पर मुसकराया और बिल चुकाने के लिए होटल के दफ्तर में चला गया।

बिल ले चुकने के बाद मैनेजर ने पूछा—'आप कब तक ठहरेंगे?'

'सुबह तक।' उसने कहा—'तब तक के लिए कुछ और तो नहीं देना होगा?'

'नहीं साहब!' मैनेजर ने मुसकरा कर जवाब दिया।

रमेश दफ्तर से निकल कर फिर अपने कमरे में आ गया और बिना बत्ती जलाये ही कुरसी पर बैठ गया। कहने को तो वह कह आया था कि वह प्रातःकाल कमरा खाली कर देगा, किन्तु वह जायगा कहाँ, यह वह समझ नहीं पा रहा था। नवीन के यहाँ जाना तो एक ओर रहा, कुछ दिनों के लिए वह उससे मिलना भी नहीं चाहता था। उससे क्या, उसका हृदय इतना बुझ गया था कि वह किसी से भी मिलना न चाहता था। उसको इस घटना से पीड़ा तो हुई ही थी। पर मानव के प्रति अभी तक जो उसके मन में विश्वास जमा था, उसका लगभग मूलोच्छेद आज हो गया था। फिर कभी वह विश्वास पनप पायगा, इसकी उसे आशा न थी। तो वह कहाँ जाय?

इतने में रात के खाने की घंटी बज उठी। उसे खाने तो जाना नहीं था। पर इससे वह चौंक कर कुरसी से उठ बैठा। बिजली-बत्ती जला कर कुछ देर तक छत की ओर देखता रहा फिर बत्ती बुझाकर कमरे से बाहर निकल आया। बड़ा बाजार में ऐसे मकानों के विषय में उसने सुन रखा था, जिनमें सैकड़ों कमरे हैं और दस-बारह रुपये महीने पर एकाध कमरा वहाँ पर प्रायः मिल जाया करता है। ऐसे ही किसी मकान की तलाश में जाने का उसने निश्चय किया।

ट्राम के अड्डे पर पहुँचकर उसने बड़ा बाज़ार की ट्राम ली और थोड़ी देर के बाद वह समृद्धिशाली बाज़ार में जा पहुँचा। बाज़ार

में उस समय काफी चहल-पहल थी। पर वह अपना मतलब किससे कहे, यह उसकी समझ में नहीं आता था। बाज़ार में एक पानवाले की दुकान थी। पानवाला रंग-ढंग से यू॰ पी॰ का मालूम देता था। आदमी साफ-सुथरा और हँस-मुख था। उसी से पूछ-ताछ करनी उचित होगी, यह निश्चय करके रमेश उसकी दुकान की ओर बढ़ गया और गोल्ड फ्लेक सिगरेट की एक डिब्बी उससे माँगी।

डिब्बी हाथ में पकड़ते हुए रमेश ने पूछा—'यहाँ कोई कमरा किराये पर मिल सकता है?'

'कितने किराये वाला?'

'यही कोई दस-बारह रुपये तक?'

'किसके लिए चाहिए?'

'अपने लिए।'

पानवाले ने सिर से पाँव तक रमेश को देखा। आश्चर्य की एक हलकी सी लहर उसके मुख पर दौड़ गई। 'किन्तु...'

रमेश ने उसे वहीं बन्द कर दिया। 'मैं जानता हूँ तुम जो कहने जा रहे हो। यह रूप जो तुम देख रहे हो, आज तक का रूप है। कल से जो रूप आरम्भ होगा, वह उसी कमरे के उपयुक्त होगा।'—कहते-कहते रमेश खिलखिला कर हँसा।

पानवाले ने किन्तु उसकी हँसी में योग नहीं दिया। गम्भीर स्वर में बोला—'मैं समझ गया। आपको कमरा मिल जायगा।'

'कृपया मुझे बता दो कि इसके लिए मुझे कहाँ जाना होगा और मालिक मकान का नाम तथा पता भी दो।'

'आपको कहीं भी जाना नहीं होगा और मकान आपके दास का ही

है।' पानवाला मुसकराया, 'चलिए मैं अभी दिखा देता हूँ।'

रमेश ने आश्चर्य से पानवाले की ओर देखा; पर कहा कुछ भी नहीं! दुकान से थोड़े अन्तर पर एक बड़ा-सा फाटक था। पान वाला रमेश को लेकर उसे पार कर गया और एक काफी लम्बी गली में जा पहुँचा, जिसके दोनों ओर बहुत ऊँची इमारतें बनी हुई थीं। उनमें कई एक कमरे थे। उनकी ओर संकेत करते हुए पान वाला बोला—'ये हैं मेरे कमरे। आप कौन-सी छत पर का कमरा पसन्द करेंगे?' यह कहता हुआ वह रमेश को एक खाली कमरे में ले गया और बटन दबाकर बिजली जला दी। कमरा लगभग नौ फुट लम्बा और नौ फुट चौड़ा होगा।

'ऐसे कमरे हैं साहब मेरे। प्रत्येक में बिजली लगी है। छः कमरे के साथ एक-एक गुसलखाना और फ्लशवाली टट्टी है।'

'किराया क्या है?'

'बारह रुपये बिजली समेत।'

रमेश ने ऊपरली छत पर का एक कमरा पसन्द किया और एक मास का पेशगी किराया देकर होटल को लौट पड़ा।

——

# बाईसवाँ परिच्छेद

कई दिनों की प्रतीक्षा के अनन्तर तारा को उस दिन की डाक से सहसा दो पत्र मिले। उनके बन्द लिफाफों से ही स्पष्ट था कि जिस पत्र की प्रतीक्षा में वह थी, वह पत्र उन दोनों में से कोई भी न था। उन पत्रों को उसने झपटकर पकड़ा था; किन्तु उन्हें खोलकर पढ़ने

में वह आनाकानी करने लगी । मूसलाधार वर्षा हो रही थी । अपनी खुली खिड़की से वह कुछ देर पत्र हाथ में पकड़े हुए उनका निरीक्षण करती रही । फिर धीरे-धीरे एक पत्र को खोलती हुई कुर्सी पर आ बैठी। वह पत्र उसके श्वसुर का था।

"प्रिय तारा", उसमें लिखा था—"हमारे मसूरी छोड़ने के बाद तुमने हमें कोई पत्र नहीं लिखा । यह ठीक है कि रमेश ने हमारा निरादर किया है; किन्तु तुम्हें हमारे यहाँ आने की मनाही नहीं । यदि तुम चाहो तो हमारे यहाँ आकर रह सकती हो । सब की ओर से नमस्ते।"

पत्र पढ़ते पढ़ते तारा के नेत्र आर्द्र हो गये । यदि मैं चाहूँ तो-- बहुत खूब। यह पत्र उसे क्यों लिखा गया । क्या उनका ख्याल है कि मैं इसे पढ़कर गद्‌गद हो उठूँगी और तीर की तरह सीधी उड़ती हुई उनके पास पहुँच जाऊँगी । यह सोचते हुए तारा ने पत्र सामने रखी तिपाई पर फेंक दिया और दूसरा पत्र उठाकर खोलने लगी।

दूसरा पत्र रमेश के मामा का था। "प्रिय पुत्री", सोमेश ने लिखा था—"अब तक शिमला में काफी सर्दी पड़नी आरम्भ हो गई होगी। इस लिए तुम्हारा अब वहाँ टिका रहना उचित नहीं। यह ठीक है कि तुम्हारे माता-पिता वहाँ रहने के लिए विवश हैं; पर तुम्हारे लिए तो ऐसी कोई बेबसी नहीं। इसलिए मैं अनुरोध करूँगा कि तुम अब मेरे पास आकर रहो। अपनी कोठी का एक सैट मैंने तुम्हारे लिए तैयार करवा दिया है। इसलिए यहाँ आने पर तुम्हें एक दिन भी असुविधा नहीं होगी। आशा है, तुम मेरा अनुरोध मान लोगी। रमेश पर कभी-कभी इतना झल्लाता हूँ कि जी में आता है कि

कलकत्ता जाकर उसे कान पकड़ कर यहाँ ले आऊँ। मीना तुम्हें नमस्कार कहती है।"

यह स्नेहस्निग्ध पत्र पढ़कर कर तारा के नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग गई। कारण, उसे पढ़ने के बाद अपने श्वसुर के पत्र में छिपा हुआ दंश बहुत ही पैना तथा दुखदायी होकर उसे व्यथित करने लगा। उसके श्वसुर ने उसे क्यों पत्र लिखा था, यह भी कुछ-कुछ उसे समझ आने लगा। सोमेश के साथ उनकी इस विषय पर कभी बातचीत हुई होगी। उसी के फल-स्वरूप सांसारिक दृष्टि से कर्त्तव्य-पालन करने के हेतु वह पत्र उसे लिखा गया था। उसने अपने आँसू पोंछ डाले और कमरे में टहलने लगी।

इतने में उसका छोटा भाई नीरज उसे ढूँढता हुआ वहाँ आ पहुँचा। 'जीजी, तुम भी कहाँ छिपकर आ बैठी हो। मैं सारा घर छानता हुआ यहाँ आया हूँ।' एकाएक उसकी दृष्टि तिपाई पर पड़े हुए पत्रों पर जा लगी। 'ये किसके पत्र हैं, जीजी!'

'एक पत्र है मेरे श्वसुर का और एक है सोमेश मामा जी का। दोनों ने लाहौर बुला भेजा है।'

'चली तो नहीं जाओगी, जीजी!' लड़के के स्वर में चिन्ता थी।

'नहीं।' थोड़ा रुककर उसने एक दीर्घ निःश्वास लिया और बोली—'किन्तु जहाँ मैं जाना चाहती हूँ, वहाँ से बुलावा ही नहीं आता।'

'समय आने पर वहाँ से भी बुलावा अवश्य आयेगा।'

'जानती हूँ;' वह पुलकित स्वर में कहती चली गई—'पर मन नहीं मानता। यदि कहीं मेरे पंख होते, तो मैं उड़कर वहाँ पहुँच

जाती। पर क्या करूँ, पंख नहीं, बिन पंख हूँ; केहि विधि उड़कर जाऊँ।' कहते-कहते तारा के नेत्र फिर गीले हो गये।

'जीजी, तुम भी कभी-कभी कैसी बातें करने लग जाती हो। आज घूमने नहीं चलोगी क्या?'

'क्यों नहीं, तुम कपड़े पहनो, मैं दस मिनट में तैयार होकर आती हूँ।'

दस मिनट के अनन्तर तो नहीं, किन्तु लगभग आध घंटा बीत जाने पर वह नीरज के साथ घूमने चल दी। अपने भाई के लाख अनुरोध करने पर भी आज उसका मन 'रिज' पर जाने के लिए नहीं मानता था। वह चाहती थी बस्ती से कहीं दूर लोगों से छिपकर प्रकृति की गोदी में जा बैठे और अपनी समस्याओं में उलझ जाय।

शिमला से तारादेवी को जाती हुई एक सड़क है, जो प्रायः एकान्त रहती है। अपने भाई को लेकर तारा ने वही सड़क पकड़ ली। सड़क के किनारे चीड़ के वृक्षों के नीचे छिपी-सी एक बेंच पड़ी थी। वे दोनों उस पर जा बैठे। बैठते ही उनके कान में वंशी का मधुर स्वर आने लगा। स्वर कहाँ से आ रहा है, यह जानने के लिए तारा ने नीचे की ओर देखा। उनसे कुछ ही दूर पर एक पतला-सा पहाड़ी निर्झर बल खाता हुआ जा रहा था। उसी के किनारे पर एक पहाड़ी युवक बैठा बाँस की वंशी बजा रहा था और उसके सामने औंधी लेटी एक पहाड़ी युवती युवक के नेत्रों में नेत्र डाले दत्तचित्त होकर उसकी वंशी की लय में खोई हुई थी। उन्हें देख कर तारा के हृदय में हलचल-सी होने लगी और उसके विरह ने शतगुणा होकर उसे आच्छादित कर दिया। वह संगीत, जिसने उसे इतना अधिक

आकृष्ट किया था, एकाएक उसे बेचैन और विह्वल करने लगा। वह व्यग्र और अशान्त होकर उठ खड़ी हुई और उतावली से बोली—'चलो चलें।'

'कहाँ?' नीरज ने पूछा।

'वापस घर।'

'किन्तु—'

'किन्तु-विन्तु कुछ नहीं। उठो नीरज, चलो चलें।'

नीरज उठ खड़ा हुआ और बहन के साथ हो लिया। चुपचाप बिना एक दूसरे से बात किये वे दोनों सड़क को रौंदने लगे। उसकी बहन की वेदना क्या है, नीरज कुछ समझता था, कुछ नहीं समझता था। किन्तु यह उसे भलीभाँति पता चल गया था कि इस समय बहन से बातचीत करना उचित न होगा। इसलिए घर पहुँचने तक दोनों बराबर मौन रहे।

---

# तेईसवाँ परिच्छेद

अगले दिन कोई लगभग दस बजे रमेश अपने नये घर से बाहर निकला। किधर और किसलिए वह जाय, यह वह निश्चित न कर पाया था। इतने में धरमतल्ला जाने वाली ट्राम आकर सहसा उसके सामने खड़ी हो गई। बिना सोचे वह उसमें सवार हो गया और कुछ ही देर बाद वह धरमतल्ला जा पहुँचा।

ट्राम-स्टैण्ड पर खड़ा-खड़ा वह सोचने लगा। वहाँ से कुछ ही अन्तर पर ग्रीक रो थी, जहाँ पर उसका नया मित्र कलाकार भट्टाचार्य

रहता था। क्यों न घण्टे-दो-घण्टे वह उसी के यहाँ हो आये। धीरे-धीरे पग रखता हुआ वह ग्रीक रो की ओर चल पड़ा।

भट्टाचार्य के स्टूडियो के बाहर पहुँच कर वह एकाएक रुक गया। फिर चुपके से अन्दर झाँका। भट्टाचार्य एक स्टूल पर पत्थर की मूर्त्ति की नाईं बैठा था। नेत्र अर्ध-निमीलित थे। रमेश को देख वह हड़बड़ाकर उठ बैठा और मुसकराकर उसका स्वागत किया—'चले आइये रमेश बाबू! आप कहाँ से भूल पड़े?'

रमेश ने स्टूडियो में प्रवेश करते हुए जवाब दिया—'आज बेकार था, इसलिए आपके दर्शन के लिए चला आया।

'बैठिए।' एक कुर्सी की ओर संकेत करते हुए भट्टाचार्य ने कहा।

रमेश के बैठते ही भट्टाचार्य भी बैठ गए।

'आप क्या सोच रहे थे?'—रमेश ने पूछा।

'सोच रहा था,' भट्टाचार्य कहने लगा, 'कला का जीवन में क्या मूल्य है! क्या मैं अपना समय व्यर्थ तो नहीं खो रहा? क्या मेरे पिता जी का ही दृष्टिकोण तो आखिर ठीक नहीं?'

रमेश ने कुछ जवाब नहीं दिया। पिता का दृष्टिकोण! भट्टाचार्य के पिता का दृष्टिकोण, मेरे पिता का दृष्टिकोण, सब के पिताओं का दृष्टिकोण और हमारा, नई पीढ़ी का, दृष्टिकोण! क्या इन दो दृष्टिकोणों का संघर्ष ही हमारे समाज की उलझन का मुख्य कारण नहीं बन रहा? यदि यही कारण है, तो उसका सुलझाव क्या है? इन दो पीढ़ियों में से किसका पथ ठीक है? इस युग का सन्देश उनके पास है या हमारे पास अथवा किसी के पास भी नहीं? या भविष्य के गर्भ में छिपी किसी आने वाली पीढ़ी के पास यथार्थ सन्देश है? रमेश कुरसी से उठ बैठा और

स्टूडियो में टहलने लगा।

भट्टाचार्य कुछ चकित, कुछ उत्सुक, रमेश की ओर देखने लगा; किन्तु बोला कुछ भी नहीं। रमेश की समस्या उसकी समस्या से मिलती-जुलती है, यह वह अवश्य भाँप गया; पर वह रमेश से कुछ भी पूछताछ न करेगा। रमेश के चाहने पर ही वह इस विषय की चर्चा करेगा।

दो-तीन मिनट तक इधर-उधर टहलकर रमेश पुनः अपने स्थान पर थोड़ा खोया-सा, कुछ लज्जित-सा, आ बैठा और क्षीण स्वर में बोला—'इस व्यवहार के लिए मैं क्षमा माँगता हूँ। मैं काबू से बाहर हो गया था।'

'क्षमा को तो छोड़िए,' भट्टाचार्य बोला—'कहीं मैंने ही तो अनजाने में कोई अनुचित बात नहीं कह दी।'

'उचित-अनुचित की बात तो मैं नहीं जानता; पर आपके कथन ने मेरे मन में एक हलचल अवश्य छेड़ दी थी।'

'वह कैसे?'

'मैं यह सोचने लगा कि क्या हमारा दृष्टिकोण ठीक है या हमारे बड़ों का? क्या युग का सन्देश उनके पास है या हमारे पास? क्या हम भूल का शिकार तो नहीं हो रहे?'

भट्टाचार्य कुछ क्षण चुप रहा। कुछ सोचता रहा, फिर कहने लगा—'भूल शायद कोई भी नहीं कर रहा। युग का सन्देश हमारे पास भी है और उनके पास भी है। केवल उसे प्रकट करने के ढंग में हमारा मतभेद है।'

'इसलिए?'

'इसलिए हमें अपनी राह पकड़ना उचित है और उनका पथ हमें उनके लिए छोड़ देना चाहिए।'

'आप शायद ठीक कह रहे हैं,' रमेश ने कहा। फिर वह एकटक भट्टाचार्य की ओर देखता रहा और एकाएक बोला—'इसका मतलब यह हुआ कि मुझे पग पीछे नहीं हटाना चाहिए। मुझे किन्तु आप'—रमेश सहसा रुक गया।

'रुक क्यों गये? यदि मेरे योग्य कोई सेवा हो, तो कहिए।'

मैं सोच रहा था कि क्या मुझे यहाँ किसी पत्र में आलोचना आदि लिखने का काम मिल सकेगा? मेरा मतलब यह है कि आप क्या इस दिशा में मेरी कुछ सहायता कर सकेंगे?'

'तो क्या व्यापार आपने छोड़ दिया?'

'यही समझ लीजिए। किन्तु यथार्थ में मैंने नहीं, बल्कि व्यापार ने मुझे छोड़ दिया है।'

'एक-दो पत्रों में आपके मतलब का काम शायद निकल आये; किन्तु उसका पारिश्रमिक काफी नहीं होगा।'

'क्या मैं ४०-५०) रुपये महीना भी न बना सकूँगा?'

'चालीस-पचास!' भट्टाचार्य ने आश्चर्य से रमेश की ओर देखा—'क्या इतने भर में आप सन्तुष्ट हो जायँगे?'

'अवश्य।'

'तो चलिये, मैं अभी टेलीफोन पर बातचीत करता हूँ। सौ रुपये मासिक तक का काम आप को मिलना, मैं समझता हूँ, कठिन न होगा।'

दोनों टेलीफोनवाले कमरे में पहुँचे। उस दिन भट्टाचार्य के पिता वहाँ नहीं थे। अपने पिता की कुरसी पर बैठकर भट्टाचार्य ने टेलीफोन

करना आरम्भ किया और उसके सामनेवाली कुरसी पर बैठकर रमेश धड़कते दिल से उसकी बातचीत सुनने लगा। उसके टेलीफोन करने के ढंग से ऐसे दीखता था कि अधिकतर पत्रवालों से भट्टाचार्य का गहरा परिचय है। उसने कुल मिलाकर पाँच स्थानों पर टेलीफोन किया और उनमें से तीन जगह उसे सफलता की आशा हुई। टेलीफोन बन्द करके उसने रमेश की ओर देखा।

'तीन जगह लगभग काम बन गया समझिये; किन्तु आपसे बातचीत करना चाहते हैं।'

'आप मुझे उनके नाम तथा पते बता दीजिए, मैं उनसे मिल लूँगा।'

'ऐसे काम नहीं चलेगा। मैं स्वयं आपका परिचय उनसे कराकर आऊँगा।'

उस दिन शाम को जब रमेश घर पहुँचा, तो उसकी बगल में कुछ पुस्तकें तथा दो-एक चित्रों के अलबम थे और जेब में दो-तीन चित्र-प्रदर्शनियों के निमन्त्रण-पत्र; क्योंकि वह कलकत्ता के तीन प्रसिद्ध पत्रों का कला तथा साहित्य-आलोचक नियत हो गया था। भट्टाचार्य के कथनानुसार उसे लगभग डेढ़ सौ मासिक की आय इस काम से अवश्य हो जानी चाहिए। उसने किताबें एक कोने में फेंक दीं और ज्यों-का-त्यों तारा को पत्र लिखने बैठ गया। उस दिन पहली बार कलकत्ता-यात्रा की एक-एक घटना ब्योरेवार उसने पत्नी को लिखी।

---

# चौबीसवाँ परिच्छेद

'जीजी, यह लो अपना पत्र।' नीरज हाथ में एक मोटा लिफाफा पकड़े हुए तारा की ओर भागता चला आ रहा था। तारा ने उतावली से पत्र उसके हाथ से ले लिया और उसपर एक दृष्टि दौड़ाई। पलक मारते ही यह स्पष्ट हो गया कि जिस पत्र की प्रतीक्षा में वह थी, वह यह पत्र था।

'जानते हो नीरज, यह किसका पत्र है?' तारा ने गद्गद स्वर में पूछा।

'यह जानना क्या मुश्किल है। यह कहाँ से आया है, तुम्हारे चेहरे पर मोटे अक्षरों में लिखा है।'

उत्तेजना से भरी हुई तारा पत्र हाथ में लिये उठ खड़ी हुई।

'कहाँ चली हो जीजी?' उसके भाई ने चकित स्वर में प्रश्न किया।

'इस पत्र को पढ़ने अपने कमरे में।'

इससे पहले कि नीरज कुछ कहे, तारा भागती हुई अपने कमरे में जा पहुँची। अन्दर से साँकल लगा पत्र खोलकर पढ़ने लगी। पत्र पढ़ते-पढ़ते उसकी अजीब हालत होने लगी। कभी उसके ओठों पर मुसकान खेलने लगती, कभी उसके नेत्र सजल हो जाते और कभी वह दीर्घ निःश्वास लेने लगती। पत्र समाप्त करने में उसे लगभग आध घण्टा लग गया। भावों का बवण्डर उसे तिनके के समान प्रकम्पित

कर रहा था। पत्र में लिखित घटनाएँ हृदय को इतना धक्का पहुँचाने वाली थीं कि वह समझ न पाती थी कि क्या करे। एक बात रह-रह कर उसके मस्तिष्क में अंकित हो रही थी कि शायद अब उसका स्थान इधर नहीं, कलकत्ता में है। पर क्या कलकत्ता जाना ठीक होगा? ऐसा करने से क्या वह पति की कठिनाइयों में वृद्धि तो नहीं करेगी? वह कुछ निश्चित न कर पाती थी और यदि सच पूछा जाय, तो उसकी मानसिक स्थिति ही ऐसी थी कि कुछ भी निश्चित करना उसके लिए सम्भव न था। तो वह किससे सलाह करे? क्या अपनी माँ से पूछे? पिता से बातचीत करे? किन्तु उसका हृदय उसे कह रहा था कि उनसे पूछना व्यर्थ होगा। वे दोनों शिमला में जम कर बैठने की ही सलाह उसे देंगे। इसलिए उनसे इस विषय में बात करना अपने साहस और बल को खोना होगा। तो फिर वह कलकत्ता ही क्यों न चली जाय। किन्तु—

वह कमरे में उतावली से टहलने लगी गहरे सोच में डूबी हुई। सहसा वह रुक गई। हाँ, उनका मस्तिष्क तराजू की तरह संतुलित है, इसलिए केवल उन्हीं की सम्मति उसे लाभकारी हो सकती है। यह सोचते हुए उसने आगे बढ़कर अपने कमरे की साँकल खोल दी और अपनी माँ के कमरे की ओर बढ़ चली।

तारा की माँ एक गद्देदार कुरसी पर बैठी कुछ बुन रही थी। बिना किसी भूमिका के तारा ने छूटते ही कहा—'माँ जी, मैं आज लाहौर जा रही हूँ।'

'लाहौर! पर इतनी जल्दी क्यों?' आश्चर्य से माँ ने पूछा।

'एक आवश्यक काम आ पड़ा है।'

'काम-वाम तो क्या होगा', उसकी माँ ने कहा—'तुम वकील साहब के पत्र से डर गई हो।'

'मैं वकील साहब के यहाँ तो जा ही नहीं रही।'

'तो और कहाँ जा रही हो?'

'सोमेश मामाजी के पास। अभी-अभी कलकत्ता से एक पत्र आया है उसी पत्र के विषय में उनसे बातचीत करनी है।'

'अच्छा! पत्र आया है?' माँ ने उत्सुकता से पूछा—'रमेश अच्छी तरह तो है?'

'हाँ।'

'तो फिर सलाह क्या करनी है?'

'यूँ ही कुछ उनके काम-काज के विषय में।'

'तो दो-चार दिन के लिए हो आओ।'

तारा उसी दिन लाहौर के लिए चल दी। चूँकि गाड़ी का समय न था, इसलिए उसने मोटर में जाना ही निश्चित किया। उसके भाई ने साथ जाना चाहा, किन्तु तारा ने उसे टाल दिया। वह अपनी समस्या सुलझाने के लिए बिलकुल एकान्त चाहती थी। वह मोटर की अगली सीट पर ड्राइवर के साथ बैठी हुई अपने भविष्य पर विचार करने लगी। ड्राइवर चूँकि मोटर चलाने में व्यस्त था और पिछली सीटवाली तीनों सवारियाँ—दो पुरुष और एक नारी—अपनी बातचीत में ही निमग्न थीं, इसलिए तारा की ओर उनमें से किसी का भी ध्यान न गया। वह अपनी समस्या में डूबती-उतराती सड़क के दोनों ओर के प्राकृतिक सौंदर्य से विमुख पत्थर की मूर्ति की-सी निश्चल उड़ती हुई कालका की ओर अग्रसर

थी। कालका पहुँच कर जिस सेकेण्ड क्लास के डब्बे में उसे स्थान मिला, उसमें केवल एक ही स्त्री और थी। किन्तु वह शिमला-कालका-यात्रा से इतनी अधिक अस्वस्थ हो गई थी कि उसमें बात करने की रुचि भी न थी। इसलिए कालका-लाहौर-यात्रा में भी तारा को मनोवांछित एकान्त प्राप्त हो गया। किन्तु फल इससे भी कुछ न निकला। उसने अपनी समस्या पर अनेक दृष्टिकोणों से विचार किया। पर निश्चय कुछ भी न कर पाई। इसी दुविधा की अवस्था में तारा सोमेश के घर पहुँची।

सोमेश कोठी के बरामदे में बैठा अखबार देख रहा था। ताँगे की आवाज सुनकर वह उठ खड़ा हुआ और तारा को ताँगे में देख कर उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

'बेटी, तुम ? मुझे सूचित तो कर दिया होता।'

'इसका समय न था।' तारा ने कहा और आगे बढ़कर सोमेश की चरण-रज मस्तक पर लगाई। सोमेश के नेत्र सजल हो उठे।

ताँगे को विदा करके जब तारा सोमेश के सम्मुख कुरसी पर बैठ गई, तो सोमेश बोला—'अब कहो।'

अपने हैण्डबैग से रमेश का पत्र निकालकर सोमेश की ओर बढ़ाते हुए तारा ने कहा—'आप इसे पढ़िए, तब तक मैं मीना को देख आऊँ। अपने कमरे में ही है न?'

'हाँ। और मुँह-हाथ भी धोते आना। चाय का समय भी हो चुका है।' तारा कोठी के अन्दर चली गई और सोमेश पत्र पढ़ने लगा।

जब तारा मीना को साथ लेकर पुनः सोमेश के निकट आई, तो वह पत्र समाप्त कर चुका था। पर साथ ही नौकर चाय भी रख गया

था। इसलिए तीनों चाय पीने के लिए बैठ गये। चाय पीते समय तारा और सोमेश दोनों ने चिट्ठी के विषय में एक भी बात न की, केवल इधर-उधर की बातें होती रहीं।

चाय समाप्त हो जाने पर जब मीना स्कूल की तैयारी करने के लिए चली गई, तो तारा ने फिर पूछा—'चिट्ठी आपने पढ़ ली?'

'हाँ, बड़ी अच्छी तरह पढ़ ली। एक प्रश्न पूछूँ? तुम्हारे निकट रमेश का स्थान अब कहाँ है?'

'वहीं, जहाँ पहले था।' तारा ने जवाब दिया—'यदि सच पूछिए तो अब वे मेरे अधिक निकट आ गये हैं। मानव की भूलें ही उसे यथार्थ राह पर लाती हैं।'

'तो तुम्हारी चिन्ता का कारण शैला नहीं? मैं बधाई देता हूँ।'

'धन्यवाद। जिस विषय में मैं आपसे सलाह करने आई हूँ वह एक दूसरी ही बात है।'

'मैं जानता हूँ।' सोमेश कहने लगा—'तुम्हारे पर कलकत्ता जाने के लिए फड़फड़ा रहे हैं, यही बात है न?'

'जी, फिर क्या आज्ञा है?'

'अभी जाना ठीक नहीं होगा, बेटी! उसे अपने नये काम की थाह पा लेने दो।'

'किन्तु अब हृदय को कैसे समझाऊँ।' तारा ने एक दीर्घ निःश्वास लिया।

'जैसे भी बन पड़े, किन्तु कुछ देर और तुम्हें रुकना ही होगा।'

'बहुत अच्छा।' तारा ने कहा—'आपकी आज्ञा कहाँ टाल सकती हूँ।' यह कहती कहती तारा उठ खड़ी हुई।

'किधर चलीं ?' सोमेश ने पूछा।

'ज़रा बाहर बाग में घूमूँगी।'

'बहुत ठीक।' सोमेश के ओठों पर एक कोमल मुसकान खेल उठी।

---

# पच्चीसवाँ परिच्छेद

रमेश ने दो एक पुस्तकों की समालोचना अभी अभी समाप्त की थी और नवीन के घर जाने की सोच रहा था कि उसे सहसा खयाल आया कि वह होटल में अपना नया पता नहीं छोड़ आया। इसलिए हो सकता है उसके कुछ पत्र वहाँ पड़े उसकी बाट जोह रहे हों। इसलिए पहले होटल में जाने का ही निश्चय उसने किया।

उसका अनुमान सचमुच ठीक निकला। दफ्तर में घुसते ही क्लर्क ने बताया कि उसका एक पत्र दो दिनों से आया पड़ा था और दो ही क्षणों में उसने छाँट कर वह पत्र रमेश के हाथ में दे दिया। पत्र लेकर रमेश ने उसको धन्यवाद किया। अपना नया पता उसे नोट करवा दिया और पत्र हाथ में लेकर वह होटल से बाहर निकल आया। पत्र किसका था यह वह पते से ही भली भाँति जान गया था। इसलिए वह एकांत में उसे पढ़ना चाहता था।

होटल के सामने एक सार्वजनिक पार्क था। उसी के एक कोने में वृक्षों के नीचे एक बेंच पड़ी थी। रमेश उसी की ओर बढ़ गया और उसपर बैठ कर पत्र पढ़ने लगा।

"प्रियवर रमेश," शैला ने लिखा था, "यह पत्र पाकर शायद तुम

उससे भी अधिक चकित होओ जो तुम मेरे व्यवहार पर हुए होंगे। मैंने जो कुछ किया है उसका मेरे पास कोई भी जवाब नहीं। केवल इतना कह सकती हूँ कि आज तक जो कुछ मैं डाक्टर जीवन के साथ मिल कर करती रही हूँ उसके लिए कभी पछतावा नहीं हुआ। सदा एक विशेष प्रकार का उल्लास तथा संतोष ही होता रहा। यह काम कितना घृणित तथा क्षुद्र है यह आज ही पता चला। मेरे हृदय में वह हलचल हो रही है, मेरे नेत्र वह खेल रच रहे हैं कि क्या कहूँ। मैं तुम्हें अपना शिकार बना कर लाई थी पर स्वयं ही तुम्हारा शिकार बन चुकी हूँ। मैं जानती हूँ कि मेरी बातों का तुम्हारे ऊपर कुछ भी असर नहीं होगा। हो ही कैसे सकता है! पर यदि कोई पापिन सच बोल सकती है तो विश्वास मानो मैंने जो कुछ किया है, परिस्थितियों तथा मजबूरियों की दासी बन कर किया है। तुम्हारे प्रति मेरे हृदय के क्या भाव हैं, वह न कहूँगी। मेरे ऐसे क्षुद्र व्यक्ति को तुम्हारे प्रति वे भाव रखने का अधिकार ही क्या है। तुम कितने महान हो, शायद तुम भी नहीं जानते!

'आज से मैंने डाक्टर जीवन को छोड़ दिया है, पर तब तक विलायत नहीं जाऊँगी जब तक अपने कृत्यों का प्रायश्चित्त यहाँ नहीं कर लूँगी।

'यदि भूले भटके कभी मेरी याद तुम्हें आये तो मेरे दोषों को न भूलना। तुम्हारी ही शैला।'

पत्र पढ़ने के अनंतर रमेश का मन उद्विग्न हो उठा। शैला का जो रूप अब उसने स्थिर कर लिया था वह फिर बदल गया। उसके प्रति रमेश के हृदय में पुनः एक कोमल स्थान स्वयमेव बन गया।

उसका मन शैला से एक बार बातचीत करने के लिए फिर उत्सुकता प्रदर्शित करने लगा। निस्संदेह शैला परिस्थितियों के कारण ही उसके साथ इतना अनुचित व्यवहार कर गई है, इसका उसे पूर्ण विश्वास हो गया। यह सोचते-सोचते शैला के गुण एक के बाद एक उसके मस्तिष्क में इकट्ठे होने लगे। शैला का रूप, यौवन, क्षमता, वाक्-पटुता, सब के सब एक मधुर स्मृति की नाईं उसे याद आने लगे। इस तरह एक लंबे समय तक वहाँ बैठे-बैठे शैला ही उसके मस्तिष्क में छाई रही। इस बीच में आकाश पर बादल छा चुके थे, एकाध बूँद भी पड़ चुकी थी, किंतु रमेश इससे बेखबर बैठा था। जब एकाएक वर्षा होने लगी तो उसका स्वप्न भंग हुआ। वह हड़बड़ा कर उठ बैठा और तेजी से सामने ट्राम स्टैंड की ओर बढ़ा। अभी किसी भी ओर से ट्राम नहीं आ रही थी इसलिए वह खड़ा-खड़ा सोचने लगा कि उसके लिए किधर जाना ठीक होगा।

रमेश अभी कुछ भी निश्चय नहीं कर पाया था कि बालीगंज जाने वाली ट्राम आकर सामने खड़ी हो गई। उसी क्षण उसने नवीन से मिलने का निश्चय कर लिया और तेजी से ट्राम में सवार हो गया।

ट्राम में वह बैठ गया पर उसे यह समझ में नहीं आता था कि वह पिछले कुछ दिनों की अपनी कहानी नवीन से कैसे कह सकेगा। प्रतिमा के प्रश्नों का क्या उत्तर देगा। शैला के विषय को लेकर वह तारा की बात अवश्य चलायगी, जिससे उसे शायद लज्जित होना पड़े। तारा की बात! यह सोचते सोचते तारा की मूर्ति उसके नेत्रों के सामने कौंध गई। क्या तारा के प्रति उसका व्यवहार न्याययुक्त था? कुछ ही मिनट पहले के शैला विषयक उसके मन के भावों को

क्या कोई उचित कह सकता है । तारा के प्रति जो उसका कर्तव्य है, जो उसका प्रेम है, क्या सचमुच उसमें वह अडिग है । तारा और शैला, फिर वही झगड़ा । क्या यह झगड़ा कभी निपट भी सकेगा । क्या उसके मन का द्वन्द्व दूर हो जायगा । द्वन्द्व ! पर द्वन्द्व था ही कहाँ ? तारा, केवल तारा, ही तो उसके हृदय सिंहासन की रानी थी । तारा का स्थान कौन ले सकता था ? किन्तु—

ट्राम एकाएक रुक गई । उसने बाहर झाँका । यहीं उसे उतरना था । वह झपट कर उतर गया । अभी तक वर्षा हो रही थी । किंतु उसकी बिना परवाह किये ही वह नवीन के घर की ओर चल पड़ा और मेंह में भीगता हुआ उसके घर पहुँचा ।

नवीन अपनी गैलरी में खड़ा बरसती हुई बूँदों की ओर देख रहा था । खड़ा खड़ा ही चिल्लाया, "अरे यह कहीं रमेश तो नहीं है । पगले भाग कर ऊपर आओ । मेंह में क्यों भीग रहे हो ?"

रमेश भाग कर ऊपर पहुँचा । इतने में प्रतिमा भी चौके से बाहर निकल आई ।

'नमस्कार भाभी ।' रमेश ने हाथ जोड़ कर प्रतिमा का अभिवादन किया ।

'नमस्कार भैया । इतने दिन तुम कहाँ छिपे रहे ? होटल वालों को तुम्हारा कुछ पता ही न था ।'

'छिपना कहाँ था भाभी ! यहीं था अपने भाग्य से लड़ता हुआ ।'

'क्यों, क्या हुआ ?' प्रतिमा के स्वर में चिंता थी ।

'यहीं खड़े खड़े बातें किये जाओगे या अंदर भी आओगे', नवीन ज़रा बेचैन स्वर में कहने लगा, 'शांति से बैठ कर सारी बात कहो ।

भाग्य से लड़ने वाले वीर की सूरत तो देखो।'

रमेश खिलखिला कर हँसा, चुपके से अंदर चला गया और एक कुरसी पर बैठ गया।

'अब कहो,' नवीन बोला।

'तुम्हारे मन में जो कुछ है पहले तुम कह लो। मैं बाद में निवेदन करूँगा।'

'मेरे मन में। मैं समझता हूँ तुम्हारे जैसा कठिन तथा उलझा हुआ मनुष्य शायद ही कहीं हो।'

'अरे भाई न चाय न पानी। लड़ना आरम्भ कर दिया।'

'यह भूल अवश्य हुई,' नवीन बोला, 'क्या इस वक्त चाय पियोगे या खाना खाओगे?'

'चाय भी नहीं पियूँगा, खाना भी न खाऊँगा', रमेश ज़रा रुक कर कहने लगा, "यदि मेरी बात मानो तो आज खाना तुम मेरे साथ बाहर चल कर खाओ।"

"बाहर कहाँ?" प्रतिमा ने पूछा।

"मेरी इच्छा बहुत दिनों से बोटेनिकल गार्डन देखने की है। क्या आज आप वहाँ चल सकेंगे?'

प्रतिमा ने अपने पति की ओर देखा और आँखों आँखों में ही दोनों ने कुछ निश्चय कर लिया। फिर प्रतिमा बोली, 'चल क्यों नहीं सकेंगे, किन्तु नन्हीं का झगड़ा ज़रूर है। उसे साथ ले जाना होगा, वहाँ पहुँच कर तो उसे नौकर रख ही लेगा।'

'बहुत ठीक', रमेश ने कहा, 'यदि तुम्हारे यहाँ कोई टिफिन बास्केट हो तो उसे निकालो। मैं आध घंटे के भीतर उसे आवश्यक वस्तुओं से

भर कर ले आऊँगा। तब तक आप दोनों तैयार भी हो जाओगे।'

उनके पास टिफिन बास्केट थी। उसे और नौकर को साथ लेकर रमेश बाज़ार चल दिया।

ठीक आध घंटे के अनंतर वे सब लोग टैक्सी में सवार होकर आउट्रम घाट पर बोटेनिकल गार्डन को जाने वाला स्टीमर पकड़ने चल पड़े।

'वहीं मैं अपनी कहानी कहूँगा', रमेश ने मोटर में बैठते हुए कहा, 'और साथ ही हज़ारों वृक्षों का जन्मदाता विशाल वटवृक्ष भी देखूँगा जिसके देखने के लिए मीनाक्षी ने विशेष रूप से आदेश दिया था।

---

## छब्बीसवाँ परिच्छेद

बोटेनिकल गार्डन के एक एकान्त लॉन में, जो ऐतिहासिक वटवृक्ष के निकट ही था, उन्होंने डेरे डाल दिये। उस समय दोपहर के लगभग दो बज चुके थे, इसलिए सब से पहले खाने-पीने की ओर ही सब का ध्यान गया। कुछ ही क्षणों में प्रतिमा ने घर से लाई हुई प्लेटों में पकवान और मिठाइयाँ परस दीं और फिर बोली, 'अब आप खाते भी जाइए और अपनी कहानी भी आरम्भ कीजिए।'

'मेरी कहानी,' रमेश मुसकराया, 'एक ही वाक्य में समाप्त होने वाली है, कोई लम्बी नहीं।'

'अर्थात् ?' नवीन ने ज़रा बेचैनी से पूछा।

'आये, लुटे और खो गये। समझे ?'

प्रतिमा और नवीन दोनों के हृदय धक से रह गये। आश्चर्य-

चकित स्वर में दोनों ने एक साथ ही प्रश्न किया, 'क्या मतलब ?'

रमेश ने संक्षेप में पिछले कुछ दिनों की अपनी कहानी निस्संकोच उनके सम्मुख रख दी। वे दोनों दत्त-चित्त किंतु विदीर्ण हृदय से उसकी बात सुनते रहे। जब उसने कहना बन्द किया तो प्रतिमा के मुख से सहसा निकला, 'अब ?'

'अब यही,' रमेश होठों को बल देकर मुसकराया, 'मेरे जीवन का एक नया अध्याय आरम्भ होता है। यदि आप लोगों और गगन भैया का सहारा बना रहा तो शायद अपना खोया हुआ अस्तित्व फिर पा जाऊँ। इससे अधिक की न मुझे आशा है और न आशा करने का अधिकार है।'

इससे पहले कि वे दोनों कुछ सहानुभूति सूचक शब्द कहें वह उठ खड़ा हुआ। कुछ ही दूरी पर नन्हीं नौकर के साथ खेल रही थी, जाकर उसने उसे गोद में उठा लिया और उससे बातें करता हुआ लॉन में टहलने लगा। यह कि वह क्यों उनसे टल गया है प्रतिमा और नवीन भली-भाँति समझ गये। इसलिए उन्होंने उसे लौट आने के लिए नहीं कहा और जो सहानुभूति-सूचक शब्द वे कहने जा रहे थे वह उनकी जिह्वा तक पहुँच न पाये। थोड़ी ही देर में वह टहलता हुआ लॉन को पार करके वटवृक्ष की ओर बढ़ गया। तब तक प्रतिमा और नवीन चुप रहे। फिर प्रतिमा किंचित् करुण स्वर में बोली, 'क्या हम कुछ सहायता नहीं कर सकते ?'

'हम ?' नवीन ने गम्भीर स्वर में जवाब दिया, 'हम यही कर सकते हैं कि उसे नैतिक प्रोत्साहन दें। इससे अधिक कुछ नहीं।'

'किन्तु'—प्रतिमा रुक गई।

'जो कुछ तुम कहने जा रही हो, मैं जानता हूँ। कहीं भूलकर भी उसके सामने आर्थिक सहायता का नाम न लेना। वह आदमी अवश्य सीधा है किन्तु आत्माभिमानी बहुत ही टेढ़ा है। पर अब मालूम नहीं चला किधर गया है।'

यह कहता हुआ नवीन उठ खड़ा हुआ और जिधर को रमेश गया था उधर ही चल दिया। प्रतिमा ज्यों की त्यों बैठी चकित मुद्रा धारण किये आकाश निरखने लगी, फिर एक दीर्घ निश्वास लेकर प्लेटें आदि टिफिन बास्केट में रखने लगी। ज्यों ही वह इस काम से निपटी त्यों ही नवीन रमेश को लेकर लौट आया।

'देख आये वटवृक्ष भैया?'

'हाँ भाभी, अद्‌भुत तरुवर है,' यह कहते-कहते उसने कलाई पर बँधी हुई घड़ी की ओर देखा, 'साढ़े तीन तो हो लिये, अब हमें चलना चाहिए।'

'हाँ चलिये।' प्रतिमा ने जवाब दिया।

थोड़ी ही देर में सब लोग नदी तट पर पहुँच गये। चार बजे वाला स्टीमर तैयार खड़ा था। वे उसमें सवार हो गये। स्टीमर में भीड़ तो कम थी किंतु सवारियों के चेहरे से घबराहट और उत्तेजना साफ दृष्टिगोचर होती थी। इस उत्तेजना का कारण क्या है, ये लोग समझ न पा रहे थे। इतने में नवीन को कुछ अंतर पर अपना एक परिचित दिखाई दिया। उसने आगे बढ़कर उससे इस घबराहट का कारण पूछा।

'आपने नहीं सुना? आज जापान ने धुरी राष्ट्रों की सहायतार्थ मित्र देशों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी है।'

'यह तो बड़ी बुरी बात हुई' नवीन के मुख से निकला।

'हाँ जी, अब भारत भी युद्ध का क्षेत्र बना समझिये और कलकत्ता पर तो दो ही एक दिन में हवाई आक्रमण होगा। यह निश्चित जानिये।'

'इसमें क्या संदेह है,' यह कह कर और उससे विदा लेकर नवीन लौट आया और यह समाचार रमेश और प्रतिमा को सुनाया। इस बीच में स्टीमर पर भीड़ बहुत बढ़ गई और जापान-भारत युद्ध की चर्चा कई भाषाओं में छिड़ गई।

जब स्टीमर उस पार जाकर लगा और सब लोग घाट पर जाकर उतरे तो वहाँ पर भी घबराहट और उत्तेजना ही छाई हुई थी।

'अब आपका प्रोग्राम क्या होगा भैया!' प्रतिमा ने पूछा।

'क्या मतलब?'

'मतलब यह कि क्या आप कलकत्ता में ठहरेंगे?'

'मैं तो कहीं जाने का नहीं', रमेश खिलखिला कर हँसा, 'मैं तो कलकत्ता को अपना घर बना कर आया हूँ। इसलिए चाहे आग बरसे चाहे गोले, मैं तो यहीं रहूँगा। और भाभी तुम?'

'मैं जिसके पल्ले बँधी हूँ उससे पूछो।'

'उससे पूछने की कोई आवश्यकता नहीं', नवीन बोला 'उसको तो यहाँ रहना ही है। हाँ, यदि आवश्यकता पड़ी तो प्रतिमा को कुछ दिनों के लिए कहीं भेज दूँगा।'

'मुझे?' प्रतिमा क्रोधित स्वर में बोली, 'भेज कर तो देखना।'

घाट छोड़ कर जब वे नगर में पहुँचे तो उत्तेजना और घबराहट के साथ साथ हलकी सी भगदड़ भी आरंभ हो गई थी। कुछ लोग तेजी से स्टेशन की ओर भागे चले जा रहे थे।

'ये लोग किधर जा रहे हैं ?' प्रतिमा ने पूछा।

'स्वार्थ की राह पर।' रमेश बोला।

'इस भगदड़ का रूप दो चार दिन में देखना' नवीन कहने लगा, जीवन का मोह कितनी आकर्षक चीज़ है।'

'किन्तु क्या यह स्वाभाविक नहीं ?' प्रतिमा ने प्रश्न किया।

'स्वाभाविक तो शायद हो किंतु कुरूप कितना है, यह तो ज़रा सोचो।'

'क्षुद्र मैं मानती हूँ, किंतु कुरूप कैसे ?'

'सौंदर्य का एक रूप, और मेरी दृष्टि में बहुत ही प्रिय रूप संयम भी है। पर जिस समय मानव में जीवन का मोह आ जाता है वह संयम खो देता है और संयम खोये हुए मानव का कितना पतन होता है वह कितना कुरूप हो जाता है, क्या इससे इनकार करोगी भाभी ?'

प्रतिमा को कुछ जवाब न सूझा किंतु तर्क में कहीं दोष है यह उसे अवश्य लगा। इस आशा में कि शायद नवीन की सूझ ही इस तर्क को तोड़ सके उसने पति की ओर देखा, किंतु नवीन ने सिर हिला दिया, 'मेरे किये कुछ न होगा, रानी ! रमेश के तर्क की भूल पकड़ना मेरे बस की बात नहीं।'

'भैया, तुम्हीं बताओ अपने तर्क का दोष।' प्रतिमा ने रमेश पर ही सारी जिम्मेदारी डाल दी।

'मेरा तर्क तो दोष-रहित है भाभी, किंतु कहें तो कह सकते हैं कि उस माता के जीवन के मोह में क्या कम सौंदर्य है जो केवल अपनी एकमात्र संतान, जिसका सहारा संसार में केवल एक वही है, के पालन-

पोषण के लिए जीना चाहती है।'

प्रतिमा उछल पड़ी, 'बहुत खूब भैया। क्या आप दोनों सचमुच एक साथ ही पढ़े हैं?' प्रतिमा ने ज़रा वक्र दृष्टि से पति की ओर देखा।

'इस प्रश्न का उत्तर मुझ से पूछो,' नवीन थोड़ा खीझ कर कहने लगा, 'हम सचमुच एक साथ ही पढ़े हैं और प्रत्येक परीक्षा में रमेश से मेरा स्थान ऊँचा रहा है। समझीं?'

'निस्संदेह,' रमेश खिलखिलाकर हँसा, 'तुम्हारा स्थान अब भी ऊँचा है। तुम मुझसे अवस्था में भी तो बड़े हो। पूरे अढ़ाई महीने।'

प्रतिमा भी खिलखिला कर हँस पड़ी और नवीन को भी अपनी लज्जा छिपाने के लिए किंचित् मुसकराना पड़ा।

---

# सत्ताईसवाँ परिच्छेद

रमेश जिस बड़ी बिल्डिंग में रहता था उसमें कुछ पंजाबी भी रहते थे। संध्या समय जब वह घर पहुँचा तो उनमें से दो तीन पंजाबी, दो मारवाड़ी सज्जनों को साथ लेकर उसके पास आ पहुँचे। यह जान कर कि वह कुछ संवाद-पत्रों से संबंध रखता है, वे उससे जापान की युद्ध-घोषणा विषयक चर्चा करने आये हैं, रमेश समझ गया।

'कैसे पधारे हैं आप?' उनका स्वागत करते हुए रमेश ने पूछा।

'हम आपसे एक महत्त्वपूर्ण विषय पर सलाह लेने आये हैं।' उनमें से एक बोला।

'आज्ञा कीजिये।'

'प्रश्न यह है कि हमारे लिए कलकत्ता छोड़ देना ही उचित नहीं क्या ?'

'आप कब से यहाँ हैं ?' रमेश ने गम्भीर स्वर मे अपने प्रश्न-कर्ता से पूछा।

'लगभग दस वर्ष से हम यहाँ रह रहे हैं, किंतु अब इस इस नगरी को छोड़ना ही पड़ेगा।' उसने एक दीर्घ निश्वास लिया।

'छोड़ना ही पड़ेगा ? क्या इसलिए कि यहाँ बम पड़ने का खतरा है, कुछ दिनों तक कलकत्ता शायद युद्ध क्षेत्र बन जाये इसलिए ?'

'यही समझ लीजिये।' अब की बार बोलने वाले एक मारवाड़ी सज्जन थे।

'तो आप जायेंगे कहाँ ?'

'अपने घर राजपूताना में। और कहाँ ?'

'किन्तु यदि वहाँ भी भय उपस्थित हो जाये जो इस समय कलकत्ता में है तो फिर आप कहाँ जायेंगे ?'

मारवाड़ी सज्जन होठों को बल देकर मुसकराये, 'आपने भी खूब बात की। तब जो होगा देखा जायेगा।' अब की बार दूसरे मारवाड़ी सज्जन बोले।

रमेश आधा क्षण चुप रहा, फिर अपने पर प्रभुत्व पाता हुआ बोला, 'जो तब देखना है वह अभी क्यों नहीं देख लेते। आप शायद यह नहीं समझ रहे कि हम आधुनिक युग में से गुजर रहे हैं। आज यदि कलकत्ता भय के क्षेत्र में है तो कल राजपूताना और पंजाब पर भी विपत्ति के घन उमड़ सकते हैं। हो सकता है कि आपके प्रान्तों

पर कलकत्ता से पहले ही अफगानिस्तान के रास्ते आक्रमण हो जाये, तब ?'

'बात तो आप ठीक कहते हैं, किन्तु—'

'किन्तु यही कि हमारे मतलब की नहीं,' रमेश मुसकरा कर कहने लगा, 'हम यह निश्चय कर चुके हैं कि हमें कलकत्ता छोड़ना ही होगा। यही आप कहने जा रहे थे न ?'

'हाँ, कुछ इसी तरह की बात कहने जा रहे थे, यह तो हम मानते हैं।'

'तो हमारे लाख समझाने पर भी आप पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा, यह भी निश्चित है।'

'पड़ेगा क्यों नहीं,' अबकी बार पंजाबी सज्जन बोले, किन्तु इस समय आप थके हुए मालूम देते हैं। विस्तारपूर्वक बात प्रातःकाल करेंगे। अब आज्ञा दीजिये।'

अभी पंजाबी सज्जन ने वाक्य समाप्त भी न किया था कि दोनों मारवाड़ी उठ कर खड़े हो गये और उनको देखते ही बाकी के तीन व्यक्ति भी उठ खड़े हुए। इससे पहले कि वह कुछ कहे वे पाँचों उसे नमस्कार करते हुए उतावली से वहाँ से खिसक गये।

उनके चले जाने पर रमेश कुछ विस्मित, कुछ उदास अधिकतर खोया-सा बहुत देर ज्यों का त्यों वहीं बैठा रहा। यदि अधिकतर कलकत्ता निवासियों का मस्तिष्क इसी राह पर चल रहा है, जो पथ उसके पाँच अतिथियों ने देखा है तो हमारे देश की बात कैसे बनेगी। मृत्यु का यह भय हमें क्या ले नहीं डूबेगा ? पांचों में से एक भी तो ऐसा न था जिसे यहाँ से भागने में तिल भर भी संकोच हो। यदि औसत दर्जे के कलकत्ता-निवासी ऐसे ही हों तो वे कुछ ही दिनों में अपने देश के मुँह

पर कालिख पोत कर यहाँ से भाग निकलेंगे। पर हो सकता है यह उसकी भूल हो। भविष्य जितना काला उसे दीख रहा है वैसा शायद न निकले। ये विचार बार-बार उसके मन में उठ कर उसे बेचैन करने लगे। इन्हीं विचारों में निमग्न काफी देर बाद वह उठा और बिना कुछ खाये पिये अपनी चारपाई पर जा लेटा।

रात भर वह सो न सका। चारपाई पर शरीर रगड़ते हुए इन्हीं विचारों में डूबते-उतराते उसने रात बिता दी।

अगले दिन तैयार होकर जब वह घर से बाहर निकला तो चारों ओर भगदड़ मची हुई थी। उसके मकान का स्वामी पानवाला उदासीन मुख लिये सड़क पर आते जाते लोगों को देख रहा था। रमेश का उसने शुष्क मुसकान द्वारा स्वागत किया और उसके लिए सिगरेट की डिबिया निकालने लगा।

'क्या सोच रहे हो?' रमेश ने उससे पूछा।

'सोच रहा हूँ कि निकट भविष्य में मेरा निर्वाह कैसे होगा?'

'क्यों?'

'इसलिए कि मकान के सब किरायेदार तो शायद आज शाम तक भाग निकलेंगे और दो चार दिन तक शायद कोई गाहक भी न दीखे।'

'तुम क्या नहीं जाओगे?' रमेश ने ज़रा उत्सुकता से पूछा।

'मैं,' रमेश को नेत्रों द्वारा चीरता हुआ पानवाला कहने लगा, 'मैं इतना कृतघ्न नहीं हूँ। अठारह वर्ष की अवस्था में मैंने लगभग एक भिखारी के रूप में इस विशाल नगरी का सहारा लिया था और पिछले तीस वर्षों में मुझे एक क्षण के लिए भी इस महान नगरी ने नहीं ठुकराया तो आज इसकी विपद के समय मैं इसे कैसे ठुकरा सकता हूँ।'

रमेश पुलकित हो उठा। उसे स्वप्न में भी आशा न थी कि इस पानवाले का यह दृष्टिकोण होगा, किन्तु अपने हर्ष को छिपाते हुए उसने फिर पूछा, 'क्या तुमको जीवन का मोह नहीं ?'

'जीवन का मोह किसे नहीं, पर मैं समझता हूँ कि प्रत्येक बम पर उन व्यक्तियों के नाम लिखे होते हैं जिनका शिकार उसे करना होता है। इसलिए यदि मेरे दिन पूरे हो गये हैं तो यहाँ से लाखों कोस दूर चले जाने पर भी वह बम अथवा मृत्यु का कोई अन्य साधन मुझे पकड़ ही लेगा।'

'तो तुम इन भागते हुए लोगों को यह बात क्यों नहीं समझाते ?'

'मेरे समझाने से कौन समझता है साहब, तो क्या आप भी नहीं जा रहे हैं ?'

'नहीं। इसलिए कम से कम अपने एक किरायेदार पर तुम अवश्य भरोसा रख सकते हो।'

इतने में एक दो गाहक और आ गये। उन्हें देख कर रमेश वहाँ से चल पड़ा। घर से तो वह यह निश्चय करके निकला था कि वह गगन भट्टाचार्य के यहाँ जायगा पर अब उसका मन किसी के पास जाने को न चाहता था। वह चाहता था कहीं दूर एकांत में बैठ कर अपने मन को स्वस्थ करे। इसलिए उसने हुगली के किनारे जाने का निश्चय किया।

नदी के किनारे पर उसकी चिर-परिचित बेंच बिलकुल खाली पड़ी थी। मानो अपने भाग्य पर निःश्वास ले रही हो। वह उसपर जा बैठा। नदी का जल अठखेलियाँ करता हुआ उछलता कूदता बहता जा रहा था। दूर, बहुत दूर, तीन चार जहाज काले बिंदुओं के समान दीखते हुए उसकी ओर मंथर गति से चले आ रहे थे। उन्हें देखकर

रमेश की कल्पना उसके हाथों से निकलने लगी। कौन जाने जहाज किसके हैं। क्या इसी तरह किसी दूसरे देश के जहाज तीन चार की संख्या में नहीं बल्कि सैकड़ों की संख्या में उसके देश पर आक्रमण तो नहीं कर देंगे ? और यदि ऐसा हो जाये तो उनके पास उन्हें रोकने के क्या साधन होंगे। उसका देश क्या कहीं सचमुच ही शत्रु-दल द्वारा प्रताड़ित तो न हो जायेगा। यह सोचते सोचते रमेश का मन उद्विग्न हो उठा। वह उठा और उतावली से नदी के किनारे टहलने लगा और बहुत देर यूँ ही टहलता रहा। इस बीच में वे जहाज काफी निकट आ गये। अब स्पष्ट दीख रहा था वे व्यापारिक नौकाएँ हैं। कुछ ही देर बाद वे उस किनारे आ लगेंगी। इसलिए वह वहाँ से लौट पड़ा। ईडन गार्डन के रास्ते होता हुआ वह बड़े मैदान में पहुँच गया। आज वहाँ चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था और घास का एक-एक तृण उसे उदास दीख रहा था। इस देश पर विपत्ति के बादल अवश्य टूटने वाले हैं यह मानो वे कह रहे थे। पर उस विपत्ति का रूप क्या होगा यह कहना कठिन था।

---

## अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

आज का पत्र देखा बेटी ?' सोमेश ने पूछा।

'जी !' तारा हाथ में पत्र पकड़े अपने मामा की ओर बढ़ती चली आ रही थी, 'वह देखकर ही आपसे एक आवश्यक बात करने आई हूँ।'

सोमेश के चेहरे पर चिंता मिश्रित उत्सुकता की एक हलकी सी

छाप पड़ गई। 'क्या बात है?' उसने पूछा।

'लोग धड़ाधड़ कलकत्ता से भाग रहे हैं।'

'इसलिए......'

'इसलिए मैंने यह निश्चय किया है कि अब मेरा स्थान नहीं है। यदि आप आशीर्वाद दें तो मैं आज की गाड़ी से चल देना चाहती हूँ।'

'मैं अधिक कुछ नहीं कहना चाहता,' सोमेश का स्वर किंचित् भारी हो चला था, 'किन्तु तुम्हारा निश्चय निस्संदेह तुम्हारे उपयुक्त है। अब तुम्हारे जाने का अवसर आ गया है। पर आज की ही गाड़ी से क्यों? इतनी उतावली क्यों?'

'विशेष कारण तो शायद मैं कोई भी नहीं दे सकती पर अब ठहर न सकूँगी। इतना जानती हूँ।'

'बहुत अच्छा। मैं अभी सब प्रबन्ध किये देता हूँ। रमेश को भी ज़रूरी तार दिलवा देता हूँ। पर क्या अकेली ही जाओगी? यदि तुम कहो तो तुम्हारे साथ किसी को भेज दूँ।'

'धन्यवाद, मैं आपकी आज्ञा से अकेली ही जाना चाहती हूँ। रास्ते में कष्ट की कोई सम्भावना मुझे नहीं दीखती।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा। तो मैं अभी जाकर सब प्रबंध ठीक करके आता हूँ।'

सोमेश के चले जाने पर तारा ज्यों की त्यों वहीं बैठी रही। आज उसने जो निश्चय किया था वह बिलकुल ठीक था, पर क्या कहीं रमेश को यह बुरा तो नहीं लगेगा। यह कि रमेश कलकत्ता नहीं छोड़ेगा इसका उसे पूर्ण विश्वास था। फिर बुरा लग ही कैसे सकता

है। कहे तो वह यही कह सकता है न कि मेरे वहाँ जाने से उसे असुविधा होगी। थोड़ी बहुत असुविधा शायद हो भी जाय पर इस कारण मैं अपना स्वत्व, विपत्ति के समय पति के निकटतम होने का अधिकार कैसे छोड़ सकती हूँ। वह लाख बुरा मानें मुझे जाना ही होगा।

सोमेश जब कमरे से बाहर निकला तो उसका मन सदा की भाँति संतुलित न था। यह ठीक है कि जो कुछ तारा ने निश्चय किया था वह उसकी आशानुसार था और यदि तारा निश्चय केवल उसी के ऊपर छोड़ देती तो भी वह अवश्यमेव यही सलाह उसे देता। परन्तु फिर भी तारा के निश्चय की असाधारण विशेषता ने उसे लगभग चकाचौंध कर दिया। यदि वह स्वयं ऐसा निश्चय करता तो वह स्वाभाविक होता क्योंकि वर्षों के अनुभव और मनन के सहारे ही वह ऐसा कर पाता। पर कल की छोकरी तारा ने यह निश्चय करके उसे विस्मित अवश्य कर दिया था। तो क्या उसके निश्चय के पीछे भी अनेक वर्षों का अनुभव और मनन था। अवश्य होगा। कौन जाने उसकी आत्मा पूर्व जन्मों द्वारा धुल धुल कर उच्च तथा पवित्र होती चली आ रही थी। यह सब कुछ सोचता हुआ सोमेश अपने गैरेज की ओर बढ़ने लगा।

पाँच मिनट के भीतर ही वह अपनी मोटर में सवार हो कर चला गया।

संध्या समय जब सोमेश तारा को गाड़ी पर चढ़ाने के लिए गया तो मीनाक्षी भी उसके साथ थी। गाड़ी चलने में अभी देर थी। तब तक उस डिब्बे की दूसरी सवारियाँ नहीं पहुँची थीं इसलिए उसका

सामान ठीक तरह से रखवा देने के अनन्तर मीनाक्षी और सोमेश भी उसके पास ही बैठ गये।

'भाभी तुम इतनी लंबी यात्रा क्या अकेली कर लोगी?'

'आशा तो यही है मीना। क्या अपने भैया के लिए कुछ संदेशा तो नहीं देना।'

मीना कुछ देर चुप रही, कुछ सोचती हुई, मानो जो बात उसकी जिह्वा पर आई हो उसे कहने से हिचकती हो। उसकी हिचकिचाहट को तारा ने पकड़ लिया। उसकी पीठ पर प्रेम से हाथ फेरती हुई मधुर स्वर में बोली, 'कहो मीना क्या कहने जा रही थीं?'

'बहुत अच्छा भाभी! भैया से यह कह देना कि मैं उनसे बहुत नाराज़ हूँ।'

'क्यों?'

'इसलिए कि उन्होंने तुम्हें बहुत दुख दिया है, कहोगी न?'

'अवश्य' तारा खिलखिला कर हँस पड़ी और सोमेश भी हँसने लगा। परंतु मीना का चेहरा गंभीर बना रहा।

इतने में डिब्बे की एक और सवारी आ पहुँची। उसे देख कर सोमेश उठ खड़ा हुआ और बाहर प्लेट फार्म पर आकर खड़ा होकर तारा से बातें करने लगा। इस बीच में स्टेशन पर भीड़ बढ़ने लगी और देखते ही देखते उस डिब्बे की सभी सवारियों ने अपने स्थान सँभाल लिये। गाड़ी चलने का समय भी अब हो गया था। सोमेश ने मीनाक्षी को, जो अभी तक अंदर ही बैठी थी, बाहर आने का संकेत किया। तारा ने उसका मस्तक चूमते हुए मुसकरा कर कहा, 'बहन, इस दुखिया भाभी को भूल न जाना।'

'भूल कैसे सकती हूँ' लज्जा से मीना का मुख लाल हो उठा। वह मुसकराती हुई डिब्बे से बाहर हो गई। इसके आधा क्षण बाद ही गाड़ी चल दी। तारा ने हाथ जोड़ कर और माथा झुका कर सोमेश को प्रणाम किया। उसने उसके सिर पर हाथ फेरकर गाड़ी के साथ चलते-चलते आशीर्वाद दिया।

स्टेशन से गाड़ी अभी बाहर ही निकली थी कि सामने की बर्थ वाली महिला ने तारा को संबोधित किया, 'कहाँ जा रही हैं आप?'

'कलकत्ता।'

'कलकत्ता? लोग तो वहाँ से भाग रहे हैं और आप वहाँ जा रही हैं। खूब!'

तारा ने उस स्त्री को सिर से पाँव तक देखा। स्त्री भले घर की तथा पढ़ी लिखी मालूम देती थी और उसका इस तरह से विस्मय प्रदर्शित करना यद्यपि आपत्ति-जनक समझा जा सकता था किंतु तारा को वह बुरा न लगा। झूठी हँसी हँस कर तारा बोली, 'मेरी परिस्थिति ही ऐसी है कि मुझे वहाँ जाना ही है। आप कहाँ जा रही हैं?'

'मैं लखनऊ तक जा रही हूँ,' वह स्त्री कहने लगी, 'मेरे पति वहाँ के प्रसिद्ध डाक्टर हैं, अमीनाबाद में हमारा बहुत बढ़िया बँगला है। आपके पति क्या करते हैं?'

'यही देखने जा रही हूँ।' तारा ने जवाब दिया।

'तो क्या वह कलकत्ता नहीं छोड़ रहे?'

'आशा तो यही है कि वे वहीं रहेंगे।'

'अच्छा तो आप उन्हें वहाँ से लिवा लाने के लिए जा रही हैं।

अब समझी।'

'आप नहीं समझीं,' तारा ने शिष्ट स्वर में कहा, 'मैं उन्हें लेने के लिए नहीं जा रही बल्कि उनके पास रहने के लिए जा रही हूँ।'

'वह भी खूब आदमी है जो अपनी औरत को इस भाँति मुसीबत में डालने के लिए बुला रहा है।' तीसरी बर्थ पर बैठी हुई एक अधेड़ावस्था की स्थूल-काय स्त्री एकाएक बीच में बोल उठी। ऐसा मालूम देता था जैसे वह इन दोनों की बातचीत दत्तचित्त होकर सुन रही थी और अपनी बुद्धिमत्ता का एक मोती बिखेरने का लोभ वह संवरण न कर सकी।

उसकी बात सुन कर तारा को बहुत बुरा लगा पर वह अपने पर प्रभुत्व पाती हुई संयत स्वर में बोली, 'मैंने आपको पहचाना नहीं और न आपकी बात समझ सकी हूँ।'

इससे पहले कि वह स्त्री कुछ कहे तारा अपने स्थान से उठ खड़ी हुई ! पास पड़े हुए अटैची केस को उठा कर बाथ रूम की ओर चल दी।

तारा ने बाथ-रूम में जान बूझ कर आवश्यकता से अधिक देर लगा दी। जब वह बाहर निकली तो वे दोनों स्त्रियाँ घुल मिल कर बातचीत में तल्लीन थीं। बिना उनकी ओर देखे तारा अपने स्थान पर अधलेटी सी पड़ गई और आँखें मूँद लीं। उसकी विचार-धारा उसे खींच कर पुनः कलकत्ता की ओर ले चली। जब वह वहाँ पहुँचेगी तो उसका स्वागत कैसे होगा। उसके पति इस बीच में क्या कुछ बदले होंगे या नहीं। इस संघर्षमय जीवन ने क्या उनकी आकृति पर भी कुछ प्रभाव डाला होगा या नहीं। क्या उसे भी कुछ संघर्ष करना

होगा ? करना होगा, उसकी अंतरात्मा ने उसे कहा, पर उसका रूप क्या होगा यह वह निश्चय न कर सकी।

---

## उनतीसवाँ परिच्छेद

सोमेश जब घर लौटा तो उसकी बहन सुभद्रा और उसका पति दोनों उसकी प्रतीक्षा में बैठे थे।

'कहाँ चले गये थे तुम ?' उसकी बहन ने पूछा।

'ज़रा स्टेशन तक गया था ? तारा को गाड़ी तक पहुँचाने के लिए।'

'तारा को ?' दोनों के मुख से विस्मय-जनक स्वर में एकाएक निकला, 'क्या वह तुम्हारे यहाँ थी ? अब कहाँ गई है ?"

'हाँ, वह कुछ दिनों से इधर आई हुई थी और आज कलकत्ता के लिए रवाना हो गई है।'

'कलकत्ता ?' सुभद्रा का मुख तमतमा उठा, 'यह तुम क्या अनर्थ ढा रहे हो सोमेश ! क्या तुम यह नहीं जानते कि कलकत्ता पर कुछ ही दिनों में बमबारी होने वाली है, इसलिए लोग उसे छोड़ रहे हैं।'

'जानता हूँ।'

'यदि जानते हो तो यह भी तुम अवश्य जानते होगे कि रमेश वहाँ से नहीं आ रहा।' अब की हरिदत्त क्रोध से बोला।

'निश्चित रूप से तो मैं कह नहीं सकता पर रमेश कलकत्ता से भागेगा नहीं, ऐसा मेरा विश्वास है। इसी विश्वास के बल पर मैंने तारा को वहाँ जाने से रोका नहीं।'

'सोमेश,' सुभद्रा झल्लाये हुए स्वर में बोली, 'तुम मेरे घर का नाश करने पर क्यों तुले हो ? पहले तुमने मेरे लाल को हम से विलग किया और अब उसे कलकत्ता में ही टिके रहने का प्रोत्साहन दे रहे हो। मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?'

अपने ऊपर लगाया गया यह दोष सुन कर सोमेश एक निमिष के लिए चकित रह गया; फिर ज़रा सँभल कर बोला, 'मैं प्रोत्साहन दे रहा हूँ ? वह कैसे ?'

'तुम खूब जानते हो कैसे' सुभद्रा कटु स्वर में बोली।

'उसकी पत्नी को वहाँ भेजकर। उसके वहाँ पहुँचने पर यदि रमेश की आने की इच्छा भी होगी तो भी वह नहीं आयेगा ऐसे।" यह वाक्य वकील महोदय के थे।

यह सुन कर तो सोमेश अवाक् रह गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था वह किस भाँति उन पति-पत्नी से अपना पीछा छुड़ाये। 'तो आपके विचार में तारा को मैंने कलकत्ता भेजा है ?"

'हम तो यही समझते हैं। क्या तुमसे उसने जाने से पहले कोई बातचीत नहीं की ?' वकील महोदय ने जिरह शुरू कर दी।

'की थी।'

'क्या बातचीत उसने छेड़ी थी कि तुमने ?'

'उसने।'

'क्या कहा उसने ?'

'आज का समाचार पत्र पढ़ कर वह मेरे पास आई और बोली, 'कि चूँकि लोग कलकत्ता से भाग रहे हैं इसलिए उसके लिए अब वहाँ अपने पति के पास पहुँचना आवश्यक था।'

'तो तुमने क्या कहा ?'

'मैंने उसके विचार के साथ सहमति प्रकट की।

'और इसके बाद उसने कलकत्ता जाने का पूर्ण निश्चय कर लिया, है न ठीक ?' वकील ओठों को बल देकर मुसकराया।

'बिलकुल ठीक।'

'तो फिर तुम कैसे कहते हो', हरिदत्त जोश से बोला, 'कि तुम उनको कलकत्ता में रहने का प्रोत्साहन नहीं दे रहे।'

'यदि उनको कुछ हो गया' सुभद्रा दाँत पीसकर कहने लगी, 'तो सारा दोष तुम्हारा होगा।'

सोमेश कुछ देर चुप रहा। अब उसका विस्मय भी जाता रहा था और खीझ भी। शान्त स्वर में कहने लगा, 'आपकी दृष्टि में मैं दोषी हूँ। हो सकता है कुछ और लोगों द्वारा भी मैं दोषी ठहराया जाऊँ। किंतु मैं जानता हूँ जो कुछ मैंने किया है वह पूर्णतया उचित है। पर उसका औचित्य आप लोगों को समझाने की न मुझ में शक्ति है और न उसे समझने की आप में क्षमता है। इसलिए मैं निवेदन करूँगा कि इस तर्क को यदि यहीं बंद कर दिया जाय तो ठीक रहेगा।' यह कहते कहते सोमेश बाहर की ओर चल पड़ा।

'अब कहाँ जा रहे हो ?' उसकी बहन ने पूछा।

'आप लोगों के खाने का प्रबन्ध करने।'

'हम...'

इससे पहले कि सुभद्रा अपना वाक्य समाप्त करे सोमेश बीच में बोल उठा, 'मैं जानता हूँ जो तुम कहने जा रही हो, किन्तु यदि आज

आप लोग मेरे घर खाना बिना आपत्ति किये खा लो तो मेरी दृष्टि में आपका मूल्य अवश्य बढ़ जायगा।'

यह सुनकर दोनों लगभग निरुत्तर हो गये और असमंजस में पड़ गये। पत्नी ने पति की ओर देखा और पति ने पत्नी की ओर, परन्तु सोमेश की ओर देखने का साहस दोनों में से कोई न कर पाता था। सोमेश मुसकराया और बोला, 'चाहें तो आप कह सकते हैं कि मेरे दृष्टिकोण का आपके सम्मुख कोई मूल्य नहीं। कहिये यह ठीक है ?'

इस बार भी दोनों चुप रहे। न ही सुभद्रा को कुछ सूझ पाता था और न अभी कुछ क्षण पहले जिरह करने वाले वकील को ही अचूक-चोट करने वाली बात सूझती थी।

सोमेश उनको ज्यों का त्यों बैठा छोड़ कर बाहर चला गया और अपने नौकर को उनका भी खाना बनाने का आदेश देकर लौट आया। वे दोनों इस बीच में काफी सँभल चुके थे और धीरे-धीरे आपस में बातचीत कर रहे थे। सोमेश चुपके से आकर उनके सामने वाली कुरसी पर बैठ गया।

'मीना कहाँ है ?' सुभद्रा ने पूछा।

'हमारी बातचीत की अरोचकता से ऊब कर, मालूम देता है, अपने कमरे में खिसक गई है। खाने पर पहुँच जायगी।'

'सोमेश', वकील महोदय एक एक शब्द तौलते हुए बोलने लगे, 'तुम बहुत चतुर हो मैं मानता हूँ, पर यदि मानो तो एक सीख दूँगा।'

'क्या ?' सोमेश ने गंभीर स्वर में पूछा।

'अपनी चतुरता को सीमा के बंधन में बाँधना सीखो। नहीं तो यह तुम्हें ले डूबेगी।'

'सच बतलाइये जीजा जी' सोमेश खिलखिला कर हँसा, 'आज कल किस भुलक्कड़ दार्शनिक का अध्ययन आप कर रहे हैं?'

वकील का चेहरा लज्जा और क्रोध से कानों तक लाल हो उठा क्योंकि उक्त वाक्य उसने एक ही दिन पहले किसी पुस्तक में से पढ़ा था। इतने अचूक ढंग से सोमेश उसे पकड़ लेगा और उसे यूँ नीचा देखना पड़ेगा इसकी उसे आशा न थी। पर कहे तो क्या। इसलिए वह चुप रहा, किन्तु सुभद्रा चुप न रह सकी। बोली, 'बड़ों का मान करना भी तो जहाँ तक मैं समझती हूँ एक गुण है।'

'जो मुझे छू भी नहीं गया, यही कहने जा रही थीं न बहन! बहन, तुम्हारा नन्हा सोमेश दुष्टतर होता जा रहा है।'

इतने में नौकर खाना तैयार हो जाने की सूचना देने के लिए आ गया।

'चलिये,' सोमेश ने कहा, 'अपनी दुष्टता की रही सही ताड़ना भोजन करते हुए ले लूँगा।'

सुभद्रा और उसके पति के जी में तो यही आता था कि खाने वाने को लात मार कर वहाँ से तीर की तरह सीधे घर चले जायें; पर सोमेश ने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी जिसके कारण ऐसा करना उन्हें मान्य न था। उसके साथ वाद-विवाद में आरंभ में उन्हें जो आशातीत सफलता मिली थी उसके कारण वे बहुत प्रसन्न हुए थे और उनको विश्वास हो चला था कि उस दिन सोमेश को परास्त कर के मिट्टी में मिला देंगे। पिछले कई वर्षों से एक भी ऐसा अवसर उनके हाथ में न आ सका था। यह देख कर कि सोमेश ने कुछ भावों और शब्दों के ताने बाने से उनकी विजय को पराजय में परिणत कर

दिया, उनके हृदय विदीर्ण हो गये थे और वे उसे विजयी छोड़ कर न जाना चाहते थे। मुख्यतया इसी कारण ने खाने के लिए ठहर गये।

कुछ ही क्षणों के अनंतर वे सब खाने की मेज़ पर पहुँच गये। सोमेश के आदेशानुसार नौकर मीनाक्षी को भी बुला लाया था।

खाना खाते समय सुभद्रा और उसके पति ने बातों के सिलसिले छेड़-छेड़ कर सोमेश को नीचा दिखाने के कई प्रयास किये पर तब तक सोमेश की प्रतिभा बहुत ज़ोर पकड़ चुकी थी। उनके शाब्दिक आक्रमणों को वह अपनी मधुर तथा जँची हुई उक्तियों द्वारा निरंतर छिन्न भिन्न करता गया।

भोजन करने के उपरांत जब वे सोमेश की कोठी से बाहर निकले तो दोनों क्रोध से भरे हुए थे। हरिदत्त दाँत पीस कर बोला, "सोमेश को एक बार, केवल एक बार, यदि कहीं मैं ठीक कर सकूँ तो! कितना संतोष मुझे मिले।'

सुभद्रा ने एक दीर्घ निःश्वास ली और चुप रही।

---

# तीसवाँ परिच्छेद

हावड़ा स्टेशन पर जब गाड़ी जाकर रुकी तो खिड़की से सिर निकाल कर तारा उत्सुकता से प्लैट फार्म पर खड़ी भीड़ में से अपने पति को ढूँढने का प्रयत्न करने लगी। वह तेजी से उसी की ओर बढ़ा चला आ रहा था। साथ में नवीन था। तारा ने मुसकरा कर स्वामी की ओर देखा और हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। फिर उसकी प्रश्न-सूचक दृष्टि नवीन पर पड़ी।

'यह नवीन है।' रमेश ने कहा।

'नमस्कार भाभी !' नवीन ने हाथ जोड़ते हुए कहा।

'नमस्कार भैया !' तारा ने प्रति-नमस्कार किया।

जब वे तीनों टैक्सी में बैठे और ड्राइवर ने पूछा कि उसे कहाँ जाना होगा तो रमेश और नवीन में झगड़ा आरम्भ हो गया। रमेश चाहता था तारा को अपने घर ले जाना किंतु नवीन यह न मानता था।

'तुम्हारा घर भाभी के उपयुक्त नहीं इसलिए जब तक तुम ठीक घर का प्रबंध नहीं कर लेते, भाभी को मेरे यहाँ ही ठहरना होगा।'

'मेरा घर अच्छा हो या बुरा हो मैं उसे वहीं ले के जाऊँगा।'

ड्राइवर का संतोष हाथों से निकल रहा था और तारा चुप किन्तु विस्मित इन दोनों के झगड़े को देख रही थी। अपनी बात पर दोनों इतने अधिक अड़े थे कि उसे समझ में नहीं आता था कि वह क्या करे। आखिर बहुत सोच विचार के बाद वह बोली, 'यदि मेरी बात आपको मान्य हो तो मैं कुछ कहूँ ?'

'कहो।' दोनों एक साथ बोले।

'आपका घर कहाँ है भैया ?' तारा ने नवीन से पूछा।

'बालीगंज' नवीन ने पुलकित स्वर में जवाब दिया।

तारा ने ड्राइवर को बालीगंज चलने का आदेश दिया और फिर बोली, 'आज दिन भर हम बालीगंज रहेंगे और शाम को हम अपने घर पहुँचेंगे।'

नवीन खीझ कर बोला 'इसका क्या मतलब ?'

'देखो भैया, आपने मेरी बात मानने का वचन दिया था, अब आपको झगड़ा करने का कोई अधिकार नहीं।'

'बहुत अच्छा भाभी, झगड़ा तो मैं नहीं करूँगा पर मैं इसका बदला अवश्य लूँगा। आपने जान बूझ कर रमेश का पक्षपात किया है।'

तारा और रमेश दोनों खिलखिला कर हँस दिये। नवीन भी मुसकराने लगा।

जब उनकी टैक्सी नवीन के फ्लैट के सम्मुख पहुँची तो प्रतिमा बाहर छज्जे पर खड़ी उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। टैक्सी को देख कर वह भाग कर नीचे आई और बाँह में बाँह डाल कर तारा को ऊपर ले गई।

'देखो बहन', जब वे सब ऊपर पहुँच गये तो प्रतिमा कहने लगी, 'मेरा इन दोनों ने नाक में दम कर रखा है। हर घड़ी, प्रति क्षण, इनमें झगड़ा ठना रहता है। मेरे सँभाले तो ये सँभलते नहीं। अब आप यदि मेरे साथ सहयोग करें तो इन दोनों को राह पर लाया जाय।'

तारा ने मुसकरा कर जवाब दिया, 'दीदी, जो कुछ आपके साथ बीतती होगी उसका नमूना मैं कलकत्ता में पाँव रखते ही देख चुकी हूँ। इनका रोग मुझे तो असाध्य दीखता है परन्तु मैं आपके साथ पूर्ण सहयोग करूँगी यह विश्वास दिलाती हूँ।'

'षड्यंत्र दो प्रकार के होते हैं,' नवीन गम्भीर मुद्रा धारण करता हुआ कहने लगा, 'खुला और गुप्त। तुम दोनों जो षड्यंत्र रच रही हो वह इन दोनों का मिश्रण है और ऐसे षड्यंत्र को विफल बनाना, मैं मानता हूँ, बहुत कठिन है; पर मुझे पूर्ण आशा है कि रमेश और मैं मिलकर तुम्हारे षड्यंत्र को इस तरह छिन्न-भिन्न कर देंगे जैसे

अरुणोदय से अंधकार छिन्न-भिन्न हो जाता है । तुम्हारा क्या खयाल है रमेश ?'

'मैं तुम्हारे साथ पूरी तरह सहमत हूँ । हम दोनों यदि एक ही पथ पकड़ लें तो विकट से विकट षड्यंत्र भी हवा के झोंके की तरह उड़ जायगा ।'

'हमको आपकी चुनौती स्वीकार है,' प्रतिमा ने कहा, 'अब कृपा करके नहा धो डालिये क्योंकि भोजन बिलकुल तैयार है ।'

कोई आध घंटे के भीतर ही सब लोग तैयार होकर खाने की मेज़ आ बैठे ! खाने के साथ साथ झगड़े की नहीं बल्कि प्रेम और सौहार्द्र की अनेक बातें होती रहीं । भोजन समाप्त होने के अनन्तर वे लोग बैठने वाले कमरे में आ गये और वहाँ पर भी बातचीत का सिलसिला जारी रहा ।

जब काफी शाम हो गई तो रमेश और तारा ने उनसे विदा माँगी । टैक्सी मँगवा उसमें अपना सामान रखवा कर उन दोनों ने नवीन दम्पती को नमस्कार किया और नन्हीं को जी भर कर प्यार किया; फिर टैक्सी में सवार हो कर घर की राह ली ।

टैक्सी की पिछली सीट पर बैठे हुए दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए जब अपने घर की ओर बढ़े जा रहे थे तो दोनों के हृदय में उथल पुथल हो रही थी । इतने दिनों के बाद वे उस दिन फिर मिले थे । इस बीच में कितनी ही घटनायें घट चुकी थीं । उनका उन दोनों पर क्या प्रभाव पड़ा था यह वे सोचते जा रहे थे । क्या तारा मेरे अधिक निकट आ गई है या उसके और मेरे बीच में अंतर पड़ गया है । यह विचार भिन्न-भिन्न रूपों में बार-बार रमेश के मस्तिष्क में

कौंध रहा था। मेरे स्वामी का प्रेम मेरे प्रति क्या वैसा ही सघन, वैसा ही सत्य, वैसा ही अलौकिक अब भी है जैसा पहले था ? क्या वह मुझ से किंचित विमुख तो नहीं हो गये ? तारा की उलझन यही थी। घर पहुँच कर जबतक खुलकर बात-चीत न होगी, दोनों के हृदय की धड़कनें जब तक साफ नहीं बोलेंगी, तब तक दोनों के मन की उद्विग्नता दूर न हो सकती थी। इसलिए दोनों चाहते थे अति शीघ्र घर पहुँचना।

जब वे घर पहुँच गये और सामान उठवा कर मकान के बाहर रखवा दिया तो रमेश ने तारा को चाबी का गुच्छा देकर ताला खोलने का संकेत किया। इस बीच में रमेश की दृष्टि मकान के बाहर लगे हुए लेटर बाक्स की ओर गई। उसमें एक पत्र पड़ा हुआ था। ताला खोल कर तारा झटपट मकान के अंदर चली गई और उसके पीछे ही सामान लेकर कुली भी चले गये। पत्र किसका हो सकता है यह सोचता हुआ रमेश भी तारा के पीछे-पीछे चाबियाँ लेने के लिए चला गया।

'ज़रा चाबियों का गुच्छा मुझे देना तारा।'

'गुच्छा पकड़ाते हुए तारा ने पूछा, 'किसलिए ?'

'लेटर बाक्स में एक चिट्ठी पड़ी है उसे निकालना है,' रमेश ने जवाब दिया और गुच्छा ले कर चला गया। तारा भी उसके पीछे-पीछे हो ली।

रमेश ने पत्र निकाल कर उसपर नज़र दौड़ाई। पत्र उसके पुराने होटल से होता हुआ वहाँ पहुँचा था। पत्र किसका है वह निमिष-मात्र में ही समझ गया।

'किसका पत्र है ?' तारा ने उत्सुकता से पूछा।

रमेश आधे क्षण के लिए असमंजस में पड़ गया फिर झूठी मुसकराहट होठों पर लाकर बोला, 'शायद शैला का है।'

'शैला का !' तारा के स्वर में विस्मय के साथ-साथ खीझ भी झलकती थी।

लिफाफे को फाड़ कर रमेश ने पत्र बाहर निकाला और उड़ती हुई दृष्टि से पढ़ने लगा।

'प्रिय रमेश', शैला ने लिखा था, 'जापान की युद्ध-घोषणा के अनंतर कलकत्ता को जो भय हो गया है उसने मुझे तुम्हारे लिए बहुत चिंतित कर दिया है। यह मैं जानती हूँ कि तुम कलकत्ता छोड़ कर नहीं जाओगे। जाना उचित भी नहीं। मेरा हृदय उड़ कर तुम तक पहुँचने के लिए उत्कंठित है, किन्तु अपने ही कर्मों की बेड़ियों से बँधी हुई उसे मनमानी से रोक रही हूँ। इसलिए यहाँ बैठी बैठी ही तुम्हारी कुशलता के लिए ईश्वर से प्रार्थना करती रहूँगी। यदि संभव हो तो कभी कभी अपनी कुशल-सूचना पत्र द्वारा दे दिया करो।

तुम्हारी ही शैला।'

पत्र पढ़ कर रमेश ने उसे तारा की ओर बढ़ा दिया। ज़रा सी हिचकिचाहट के बाद तारा ने उसे पकड़ लिया और उसे एक साँस में पढ़ गई। फिर पत्र को तह करके उसके लिफाफे में डाल कर रमेश को लौटा दिया। बिना कुछ कहे कुछ दूर पड़ी हुई कुरसी पर बैठ गई। रमेश जहाँ का तहाँ खड़ा रहा। बहुत देर गहरे सोच में डूबे रहने के बाद उसने मौन भंग किया, 'क्या यह पत्र हम दोनों के बीच बाधा-स्तंभ तो नहीं बन रहा ?'

'नहीं।' तारा ने शांत स्वर में जवाब दिया।

'तो फिर तुम चुपके से वहाँ क्यों जा बैठीं?'

'इसलिए कि मानव हूँ, धड़कते हृदय वाली नारी हूँ।'

इसके अनंतर कुछ देर दोनों चुप रहे। फिर रमेश बोला, 'मैं ज़रा खाने-पीने का प्रबंध करने जा रहा हूँ। तुम इस बीच में सामान आदि ठीक कर लो।'

'बहुत अच्छा।'

कोई लगभग एक घंटे के अनंतर खाना खाकर दोनों अपनी चारपाइयों पर जा लेटे। उन दोनों के हृदयों में जो अग्नि प्रज्वलित थी उसका रूप अवश्य भिन्न था पर उसकी ज्वाला एक समान दोनों को दग्ध कर रही थी। दोनों चाहते थे कि शैला के पत्र को लेकर बात बढ़े किंतु दोनों का संयम कुछ करने न देता था।

## इकतीसवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन प्रातःकाल जब तारा और रमेश सोकर उठे तो दोनों के मस्तिष्क बहुत कुछ सुलझ गये थे, यद्यपि उनके हृदय अभी तक बेचैन थे। रात की घटना ने उनके मध्य में जो हलकी सी दीवार खड़ी कर दी थी, दोनों उसे तोड़ डालने के लिए विशेष उत्सुक थे। तारा चाहती थी कि बात पति की ओर से चले और रमेश चाहता था कि तारा इस विषय को लेकर वाद-विवाद छेड़े, इसलिए जब तक दोनों नहा-धो कर तैयार न हो गये स्थिति वही रही जो पहले थी।

'चलो,' रमेश ने कहा, 'कहीं चल कर चाय पियें और छोटे मोटे

नौकर का भी प्रबंध करें।'

'चलिये' इससे अधिक तारा ने कुछ नहीं कहा।

मकान को ताला लगा कर दोनों बाहर निकल पड़े। रमेश सिगरेट लेने के लिए अपने चिर-परिचित पानवाले की दुकान पर पहुँचा।

'क्या कोई छोटा नौकर नहीं मिल जायगा ?' सिगरेट की डिबिया हाथ में पकड़ते हुए रमेश ने पूछा।

पानवाले ने प्रश्न सूचक दृष्टि से तारा की ओर देखा और बोला 'तो क्या...'

'हाँ, ये मेरी पत्नी हैं। कल यहाँ आई हैं।'

पानवाले ने हाथ जोड़ कर तारा को नमस्कार किया। तारा ने मुसकरा कर उसे प्रति नमस्कार किया और बोली, 'हमें नौकर अवश्य ढूँढ दीजिये।'

'नौकर तो मैं ढूँढ दूँगा पर वह रहेगा कितने दिन यह कहना कठिन है। आप तो अब यहीं रहेंगी न ?'

'आई तो इसी नीयत से हूँ ?' तारा ने जवाब दिया।

'अच्छा तो शाम तक नौकर का प्रबंध करने का प्रयत्न अवश्य करना।' रमेश ने कहा और तारा को लेकर चल पड़ा।

उनके घर से थोड़ी दूरी पर एक रेस्तराँ था। बहुत बढ़िया तो नहीं किन्तु काफी साफ सुथरा था। वे दोनों वहीं पहुँचे और उसके एक एकांत कोने में जाकर बैठ गये।

जब दोनों प्यालों में तारा चाय ढाल चुकी और वे चाय पीने लगे तो नेत्रों द्वारा पति को चीरती हुई बोली; 'अब कहिये।'

'क्या ?'

'वही जो रात भर ताना-बाना बन तुम्हारे मस्तिष्क में घूमता रहा है।'

'मेरे मस्तिष्क में ! मानो तुम शांत निश्चिन्त नवजात बालक की भाँति सोई रहीं।' रमेश के स्वर में मधुर व्यंग्य था।

'देखो, मुझे बनाओ मत,' तारा का स्वर गंभीर था, 'यह बात जिह्वा की चतुराई द्वारा काट कर फेंकी न जा सकेगी। मैं साफ-साफ जानना चाहती हूँ कि तुम और तुम्हारी शैला मुझे किन और कहाँ तक काँटों में घसीटना चाहते हो।'

'मैं और मेरी शैला ? तो तुम्हारे विचार में शैला मेरी हो चुकी है ?'

'यही तो जानना चाहती हूँ कि तुम्हारी हुई है या नहीं।'

'नहीं। हजार बार नहीं।'

'होने की संभावना है क्या ?'

'नहीं।'

'सच कहते हो ?'

'बिलकुल।'

'तो लाओ तुम्हारे लिए दूसरा प्याला चाय का बनाऊँ।' तारा का हृदय एकाएक कुछ हलका हो उठा। उसके मन में जो संदेह का बीज उत्पन्न हुआ था वह जाता रहा, क्योंकि वह यह भलीभाँति जानती थी कि उसका पति उसके साथ कभी झूठ नहीं बोलेगा। इसलिए इसका उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि अभी तक उसके पति के हृदय पर उसी का आधिपत्य था। पर क्या यह आधिपत्य अंत तक चलेगा ? शैला का जादू क्या कहीं उसके स्वामी को उससे छीन तो नहीं लेगा। जो कुछ उसने सुन रखा था उसके अनुसार शैला एक बहुत ही

आकर्षक स्त्री थी और शैला का जो पत्र पिछली रात उसने पढ़ा था उससे यह झलकता था कि वह अति चतुर भी है। अतः कौन जाने कब शैला मुख्य समस्या बन कर उसके रास्ते में खड़ी हो जाये और कितना कठिन संघर्ष उसे पति को पुनः पाने के लिए करना पड़े। यह सब कुछ सोचते हुए चाय की प्याली तारा के हाथ में पकड़ी की पकड़ी रही उसने एक घूँट भी उसमें से न पिया।

रमेश पत्नी की यह दशा ध्यानपूर्वक देख रहा था यद्यपि चाय भी पिये जा रहा था। आखिर जब उसने देखा कि तारा की भाव-भंगी क्षण-प्रतिक्षण गम्भीरतर होती जा रही है तो उसने मुसकरा कर पूछा, 'क्या सोच रही हो तारा?'

'मैं?' तारा हड़बड़ा कर बोली, मानो स्वप्न से जाग रही है। चाय की प्याली को मुँह से लगा लिया और उस ठंडी चाय को एक ही घूँट में समाप्त कर गई।

'हाँ, तुम' रमेश ने कहा।

तारा ने प्याली प्लेट में रख दी और नेत्रों द्वारा पति को तौलती हुई कहने लगी, 'मैं सोच रही हूँ कि सागर की उत्ताल तरंगों में डूबते-उतराते किसी व्यक्ति का यदि केवल एक ही सहारा हो जिसके बल पर उस तूफानी सागर को पार करने की उसे आशा हो और वह सहारा एकाएक उसे छिनता हुआ दीखे तो उस व्यक्ति को क्या करना चाहिए।'

'मैं बात समझा नहीं', रमेश ने अर्ध गम्भीर स्वर में कहा, 'अपने को ज़रा स्पष्ट करो। व्यक्ति कौन? सहारा कैसा और सागर कहाँ यह साफ़-साफ़ बतलाओ।'

'व्यक्ति मैं, सहारा तुम और सागर कहाँ, यह तुम पर छोड़ती हूँ। यदि अब भी नहीं समझे तो मैं समझाना ही नहीं चाहती।'

रमेश खिलखिला कर हँसा, 'तुम्हारे मन के एकांत कोने में संदेह के अंकुर का क्षीणतम कण अभी तक जमा है। अपने रमेश को जानती हुई भी तुम उसको जानना नहीं चाहतीं।'

'जानना चाहती भी हूँ और जानती भी अच्छी तरह हूँ। मेरे मन में संदेह का इस समय कहीं नामोनिशान भी नहीं। किन्तु भविष्य के जो चित्र मेरी कल्पना चित्रित कर रही है वह बिलकुल भय-रहित हों ऐसी बात नहीं।'

'तुम्हारा भय निर्मूल है यह तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ?'

'विश्वास दिलाने से कुछ बनेगा नहीं, क्योंकि भविष्य की बाग-डोर न तुम्हारे हाथ में, है न मेरे हाथ में। भविष्य में जो होगा देखा जायगा। अभी से उसकी छाया को अपने जीवन पर हम क्यों छाने दें। चलो उठो, मुझे कहीं ऐसी जगह ले चलो जहाँ चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश हो, अंधकार का कहीं नाम तक न हो।'

'चलो!'

रमेश ने अपना बिल चुका दिया और तारा को लेकर उस रेस्तराँ से बाहर निकल आया।

कुछ ही दूर पर धर्मतल्ला जाने वाला ट्राम का स्टॉप था, दोनों वहाँ जाकर खड़े हो गये और ट्राम की प्रतीक्षा करने लगे।

'कहाँ ले जाओगे मुझे?' तारा ने ज़रा उत्सुकता से पूछा।

'बड़े मैदान में जहाँ चारों ओर सुनहली धूप है, हवा में लहराते हुए हरी-हरी घास के तृण हैं और उसके मध्य में खड़ा दूध सा श्वेत

विक्टोरिया मेमोरियल है।'

मैदान के किनारे पर तीन-चार वृक्षों का एक झुरमुट है। उसके नीचे एक दो बेंचें पड़ी थीं। रमेश तारा को लिये वहीं पहुँचा। उस समय बेंचें बिलकुल खाली थीं और मैदान में भी सूर्य की धूप और धूर से अठखेलियाँ करती हुई पवन के अतिरिक्त कुछ न था। वे दोनों एक बेंच पर बैठ गये। तारा की धानी रंग की रेशमी साड़ी का छोर हवा से फड़फड़ाने लगा और पवन उसकी सुनहली केश-राशि से भी छेड़छाड़ करने लगा। अपनी पतली कलामय उँगलियों द्वारा उसने बालों और साड़ी के छोर को ठीक किया और अपने विशाल नेत्रों द्वारा पति की ओर देखती हुई मुसकराई और बोली, 'यह मैदान सचमुच बहुत विचित्र है। ऐसा मालूम देता है मानो इसके हृदय में भी वैसी ही धड़कन है जैसी हमारे हृदय में है।'

'और क्या ऐसा नहीं मालूम देता जैसे इस पर गहरी उदासी छाई हो और इन पवन के झोंकों द्वारा यह आहें भर रहा हो।'

'निस्संदेह', तारा ने प्रशंसात्मक दृष्टि से पति की ओर देखा और बोली, 'तुम्हारे समान हृदय भी शायद ही कहीं मिले, जो इतने लंबे चौड़े मैदान की भाषा भी पढ़ लेता है। तुमने मुझे इतने दिनों तक अलग फेंक कर कितना अन्याय किया है। क्या तुम जानते हो?"

'जो कुछ हुआ सो हुआ, पर अब मैं तुम्हें एक क्षण के लिए भी विलग न करूँगा।'

यह कहते हुए रमेश ने तारा का हाथ अपने दोनों हाथ में ले लिया और कोमलता से उसे सहलाने लगा।

———

# बत्तीसवाँ परिच्छेद

कलकत्ता पहुँचने के पाँच छः दिनों के भीतर ही तारा ने अपना घर ढंग से बाँध लिया। एक छोटा-सा नौकर भी उनको मिल गया था जो तारा की देख-रेख में चौके-चूल्हे के प्रायः सभी काम सँभालता जा रहा था। हाँ उनके रहने का स्थान अवश्य छोटा था और ठीक भी न था। पर रमेश के लाख कहने पर भी तारा किसी और जगह जाने के लिए न मानती थी।

'जितनी आय हमें हो रही है उसे देखते हुए हमें इससे बड़ा निवास-स्थान लेने का अधिकार ही नहीं,' तारा का वहीं जमे रहने का यह विशेष कारण था। इसके विपरीत रमेश का यह कहना था कि उसकी आमदनी दिन-प्रतिदिन बढ़ रही थी इसलिए किंचित् बड़ा घर ले लेने से उन्हें विशेष आर्थिक कठिनाई नहीं होगी। सच पूछा जाय तो रमेश की बात ठीक न थी। आज से कुछ दिन पहले उसकी आय बढ़ने के लक्षण अवश्य नज़र आते थे, किन्तु जापान की युद्ध-घोषणा के अनंतर अधिकतर लोगों के कलकत्ता छोड़ जाने के कारण उसकी आय के नीचे जाने की अधिक संभावना थी, यद्यपि उस समय तक रमेश इस बात को समझ नहीं पाया था। यह बात उसी दिन स्पष्ट होकर उसके सामने आई जब वह अपने एक मित्र संपादक के पास आलोचना के लिए पुस्तकें लेने गया।

'पिछले कुछ दिनों से तो हमारे पास आलोचनार्थ एक भी पुस्तक नहीं आई' संपादक ने उसे सूचित किया।

'क्यों ?' रमेश ने कुछ विस्मित किन्तु अधिकतर निराश स्वर में पूछा।

'इसमें पूछने की कौन सी बात है। कलकत्ता के वातावरण को देखते हुए कौन अपनी पुस्तकें हमें भेजेगा।' संपादक के स्वर में भी निराशा थी। 'यदि यूँ ही चलता रहा तो मैं समझता हूँ अपनी पत्रिका को जीवित रखना हमारे लिए कठिन हो जायगा।'

'अच्छा! बात यहाँ तक बढ़ गई है?'

'अभी तक तो खैर विशेष कुछ नहीं बिगड़ा किन्तु बहुत दिनों तक स्थिति हाथ में रह सकेगी, ऐसी मुझे आशा नहीं दीखती।'

एकाध इधर उधर की बात करके रमेश जब संपादक के कमरे से बाहर निकला तो उसका हृदय किंचित् विचलित हो रहा था। यह एक नई समस्या उसके सामने आकर खड़ी हो गई थी। लोग यदि सचमुच कलकत्ता छोड़ कर भाग निकलें तो उसके लिए काम कहाँ रह जायगा। तो क्या उसे भी कलकत्ता छोड़ने के लिए बाध्य नहीं होना पड़ेगा। पर चाहे कुछ भी क्यों न हो, उसे भूखों ही क्यों न मरना पड़े वह यहाँ से जायगा नहीं। इन्हीं विचारों में तल्लीन वह घर पहुँचा।

'तुम्हारा एक पत्र आया पड़ा है।' तारा ने कहा।

'कहाँ है? किसका है?'

तारा ने पत्र उसके हाथ में दे दिया, 'स्वयं ही देख लो।'

पत्र देखते ही रमेश जान गया कि वह कहाँ से आया है और उसमें क्या लिखा होगा। वह पत्र हाथ में लेकर पास पड़ी हुई कुरसी पर बैठ गया और बिना खोले ही पत्र को अपनी गोदी में फेंक दिया।

'पढ़ते क्यों नहीं इसे?' तारा ने मुसकरा कर पूछा।

'एक निराशा पर प्रभुत्व पहले पा लूँ फिर पिता की गालियाँ भी खा लूँगा।'

'क्यों क्या हुआ ?' तारा के स्वर में थोड़ी घबराहट थी।

रमेश ने संक्षेप में तारा को बात बतला दी। तारा खिलखिला कर हँसी और बोली 'बस इतने से ही घबरा गये हो ?'

अब रमेश ने लिफाफा उठाकर खोला और उसमें से पत्र निकाल कर पढ़ने लगा। 'प्रिय रमेश', पिता ने लिखा था, 'यह मैं मानता हूँ कि पिता पुत्र के पारस्परिक व्यवहार में आने वाले कर्तव्यों में से अधिकतर कर्तव्य पिता के जिम्मे ही हैं। दो एक कर्तव्य किंतु ऐसे भी हैं जिनका पलन करना पुत्र के लिए भी आवश्यक है। पर एक तुम हो कि उनको निर्दयता से ठुकराते हुए ज़रा भी नहीं हिचकिचाते। फिर भी तुम्हें यह पत्र लिखने का साहस कर रहा हूँ और यह जानते हुए कि तुम मेरी कही हुई बात को कदापि नहीं मानोगे, क्योंकि तुम्हारा मन और बुद्धि अपने वश में नहीं। खैर मैं तुम्हें यह कहना चाहता हूँ कि कलकत्ता तुरन्त छोड़ दो। जान बूझ कर बरसती आग में रहना मेरी समझ में तो मूर्खता है। आगे तुम जानो। यहाँ सब तरह से ठीक ठाक है। आशा है तुम अच्छी तरह से हो।'

पत्र पढ़ कर रमेश थोड़ा मुसकराया फिर उसे तारा की ओर बढ़ा दिया 'लो देखो कितना स्नेह-सना पत्र है।'

तारा पत्र एक साँस में पढ़ गई और बिना कुछ कहे पति को लौटा दिया।

'कुछ बोलीं नहीं ?' रमेश ने पूछा।

'मैं ?' तारा के स्वर में छिपा हुआ व्यंग्य था, 'मैं यह अनधिकार

चेष्टा कैसे कर सकती हूँ ।'

'समझ में नहीं आता कि क्या जवाब दूँ और जवाब तो देना ही होगा । क्या नहीं ?'

'क्यों नहीं ।'

'तो फिर तुम्हीं सुझाओ कि क्या लिखूँ । इस विषय में तुम्हें सम्मति तो देनी ही होगी ।'

'यह मुझसे न हो सकेगा', तारा मधुर स्वर में कहने लगी, 'यह विषय मेरे सम्मुख आते ही मेरे मस्तिष्क में बादल छा जाते हैं ।'

'वही हाल मेरा है, तो फिर क्या करूँ ?'

'सूर्य देव से ज्योति दान माँगो । दो एक दिन के अनन्तर वे अवश्य तुम्हारे मस्तिष्क के बादल छिन्न-भिन्न कर देंगे । पर यदि मुझसे पूछो तो इस विषय पर विचार करना व्यर्थ है । चाहे भला लिखो चाहे बुरा, यश तो तुम्हें मिलने का नहीं । इसलिए जो कलम की नोक पर आ जाय वह बिना हिचकिचाहट के लिख दो और अपनी चिंता से मुक्ति पाओ ।'

'एवमस्तु', रमेश ने कहा, 'पकड़ाओ मेरा पैड और कलम ।'

तारा ने झटपट उठाकर लिखने का पैड और कलम पति को पकड़ा दी और स्वयं कमरे के कोने में पड़ी हुई एक कुरसी पर जा बैठी । रमेश सोच में डूबा हुआ पिता को पत्र लिखने बैठ गया ।

———

# तैंतीसवाँ परिच्छेद

दो तीन मास और बीत गये। इस बीच में कलकत्ता लगभग नारी-विहीन हो गया। बालक भी कहीं कहीं भूला भटका ही दीखता था। रमेश की आय दिन-प्रतिदिन कम होने लगी। अब अवस्था यहाँ तक बिगड़ चली थी कि यदि शीघ्र ही कोई उपाय न हुआ तो उनके लिए कलकत्ता में रहना संभव न था। और कलकत्ता छोड़ना उनके लिए इतनी बड़ी पराजय होगी जो आयु पर्यन्त एक तीखी कसक बन कर उनके जीवन को दूभर करती रहेगी। इसलिए करें तो क्या।

'कोई दूसरा काम ही देखो,' एक दिन जब वे दोनों अपने भविष्य पर विचार कर रहे थे तो तारा ने कहा।

'क्या देखूँ' यही तो सोच नहीं पाता हूँ। अधिकतर बड़ी-बड़ी कोठियों वाले व्यापारी भी अपने हेड आफिस यहाँ से हटा रहे हैं। छोटे-मोटे व्यापारी तो आरम्भ में ही भाग गये थे। कई एक स्कूल भी यहाँ से चले गये हैं। केवल एक ही बात सूझती है।' रमेश मुसकराया।

'क्या ?'

'कंधे पर यदि कुछ बिसाती का सामान उठाकर गली गली बेचने लगूँ तो फिर शायद आर्थिक स्थिति सँभल सके।'

'इस बार तारा खिलखिला कर हँसी, 'विचार तो ठीक है। सामान तुम उठा लेना आवाज़ मैं लगाऊँगी। फिर देखना ग्राहक कैसे टूटते हैं।'

रमेश भी ठहाका मार कर हँसने लगा। ठीक उस समय किसी ने उनका द्वार खटखटाया।

'चले आइये,' रमेश ने कहा।

परदा एक ओर हटा कर गगन भट्टाचार्य कमरे में घुस आया, 'मजाक क्या था मैं भी तो सुनूँ,' नमस्कार करते हुए उसने पूछा।

दोनों थोड़ा लज्जित हुए और उसे प्रति नमस्कार किया।

'आप कैसे भूल पड़े!' रमेश ने पूछा और एक कुरसी पर बैठने का संकेत किया।

'यदि सच पूछो तो एक बहुत आवश्यक काम खींच लाया है।' उसने कुरसी पर बैठते हुए जवाब दिया।

'आपसे एक निवेदन करने आया हूँ। आशा है आप निराश नहीं करेंगे,' गगन विनीत स्वर में कहने लगा, 'मेरे एक परम प्रिय सुहृद हैं, जिनका एक मासिक पत्र यहाँ से निकलता है। उन्हें उस पत्र से बहुत मोह है और वे चाहते हैं कि वह किसी भी कारण वश बंद न हो। आरंभ में पत्र का सहायक संपादक भाग गया। उसका बहुत-सा भार मुझे उठाना पड़ा। अब संपादक भी जा रहा है। उसे बंबई में बहुत अच्छी जगह मिल गई है। अब लाख ढूँढने पर भी उसके लिए कोई संपादक नहीं मिलता। कलकत्ता में जो अच्छे लोग थे वे चले गये और बाहर से कोई यहाँ आज-कल आना नहीं चाहता।'

'कौन से पत्र के विषय में आप कह रहे हैं?' रमेश ने प्रश्न किया।

'पत्र को आप भली प्रकार जानते हैं। देश में ललित कलाओं की आलोचना का वही एक मात्र उच्चकोटि का साधन है।'

'क्या आपका आशय 'आर्ट क्रिटिक' से तो नहीं?'

'हाँ, मैं उसी की बात कर रहा हूँ। क्या आप उसका संपादन-भार सँभाल लेंगे?'

'मैं? मुझे तो इस लाइन का अनुभव नहीं।'

'अनुभव की बात छोड़िये। आपका हाथ लगते ही पत्र और भी खिल उठेगा, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है। इसलिए आपकी इस आपत्ति का मेरे निकट कोई भी मूल्य नहीं। आपको और भी कोई एतराज़ है।

'नहीं।'

'तो फिर आपको मेरा प्रस्ताव स्वीकृत है न?' गगन प्रसन्न होकर बोला, 'अब बात रही वेतन की। आज-कल प्रधान संपादक को साढ़े तीन सौ मासिक मिल रहा है और रहने का मकान मुफ्त। यही कुछ आपको देने का मुझे आदेश मिला है। यदि आप कम समझें तो मैं अपने मित्र से पूछ-ताछ कर के कुछ बढ़वा भी दूँगा।'

'कम?' रमेश हँसने लगा, आपको शायद मालूम नहीं कि हमारी आर्थिक स्थिति इतनी गिर चुकी है कि आपके आने से पहले हम दोनों गली-गली घूम कर माल बेचने की बात सोच रहे थे और यही हमारी हँसी का कारण था। इसलिए मैं आपसे निवेदन करूँगा कि वेतन स्थिर करते हुए इस बात को दृष्टिगत अवश्य कर लीजिये। इस समय यदि आप मुझे डेढ़ दो सौ रुपया ही दिलवा देते तो मैं सहर्ष स्वीकार कर लेता।'

गगन खिलखिला कर हँसा, 'यदि पहले यह सब कुछ बता दिया होता तब तो बात थी। अब साढ़े तीन सौ से कम कैसे मिल सकता है।'

'हम धन्यवाद सहित उसे स्वीकार करते हैं,' अब की बार तारा ने कृतज्ञ स्वर में कहा, 'और यदि दस मिनट तक आप मेरी प्रतीक्षा करें तो मैं बहुत ही गर्म प्याला चाय का आपके लिए लेकर आती हूँ।'

'मैं बैठा हूँ। चाय बगैर पिये मैं यूँ भी जाने का नहीं था।'

जब तारा चाय लेने चली गई तो रमेश कहने लगा, 'मैंने आपकी बात तो मान ली किन्तु मैं बहुत घबरा रहा हूँ। आपको इससे तंग होना पड़ेगा। मैं संपादकीय कर्तव्यों पर लेक्चर लेने आपके पास प्रायः पहुँचा करूँगा।'

'सहर्ष पधारिये। जो कुछ मुझसे बन पड़ेगा मैं उससे पीछे नहीं हटूँगा। यूँ आपकी घबराहट काल्पनिक है, यह मैं खूब जानता हूँ। आप कब तक अपने नये घर में चले जायेंगे?'

'अभी तारा से इस विषय पर सलाह करूँगा, पर आशा है इसमें विलंब नहीं होगा। मुझे अपने मालिक मकान से भी बात करनी है।'

इस बीच में तारा चाय ले आई। चाय पीकर तथा कुछ देर इधर उधर की बातें करके गगन चला गया।

तारा तथा रमेश अपने पनवाड़ी मालिक-मकान के पास पहुँचे। अपनी नित्य की सिगरेट की डिब्बी माँगते हुए रमेश कहने लगा, 'तुम्हें अपने एक और किरायेदार से भी अब हाथ धोने पड़ेंगे।'

'क्या आप भी कलकत्ता छोड़ रहे हैं?' पानवाला ज़रा विस्मित

स्वर में बोला 'है भी शायद उचित क्योंकि यहाँ भय दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है।'

'कलकत्ता नहीं छोड़ रहे हैं और न ही शायद इस भय के कारण छोड़ेंगे।'

'फिर।'

'मुझे एक पत्र का संपादन मिल गया है जिसमें वेतन के साथ-साथ निःशुल्क मकान की भी व्यवस्था है। उस मकान में रह कर ही काम को भली भाँति किया जा सकता है।'

'तब कोई बात नहीं,' पानवाले के सिर से मानो मनों बोझा उतर गया हो, 'यदि आप भी यहाँ से चल देते तो मेरे हृदय को सचमुच एक प्रबल धक्का लगता। कभी-कभी दर्शन अवश्य दिया कीजिये।'

'बहुत अच्छा।' रमेश ने कहा और तारा को लेकर घूमने चल पड़ा।

---

# चौंतीसवाँ परिच्छेद

अगले दिन तारा तथा रमेश अपने नये घर चले गये। था तो वह उनके दफ्तर के साथ सटा हुआ तीन कमरों का छोटा सा फ्लैट, किन्तु बना हुआ साफ सुथरा था। वह खुलता भी दक्षिण की ओर था ताकि बरसात तथा गर्मी के मौसम में भी पवन देव की उनपर कृपा बनी रहे। कुछ तो सामान मकान में पहले से ही था और थोड़े बहुत का प्रबन्ध रमेश ने कर लिया जिससे उनके कमरे एक-दो

दिन में ही न केवल रहने योग्य बल्कि आरामदेह भी बन गये।

मकान ठीक हो जाने पर रमेश ने अपने पत्र की देख-भाल आरम्भ कर दी। गगन भट्टाचार्य की सहायता से कुछ ही दिनों में उसने अपने काम को समझ लिया। जब रमेश के संपादकत्व में उसके पत्र का पहला अंक निकला तो यह कहने का साहस कोई नहीं कर सकता था कि वह किसी नौसिखिये के हाथों में है। दो-एक स्तंभ तो रमेश ने नये भी खोल दिये जिससे पत्र की रोचकता बढ़ गई। कुछ अच्छे आलोचकों ने पत्र के नये रूप की चर्चा भी की। इससे रमेश तथा गगन को काफी संतोष हुआ।

'मैं तो पहले से ही जानता था कि तुम्हारा हाथ लगते ही पत्र का अनुपात ऊँचा हो जायगा,' गगन ने दफ्तर में घुसते हुए कहा। उसके हाथ में एक साप्ताहिक पत्र का नया अंक था, 'यह देखो, आज चारु बाबू ने भी तुम्हारे पत्र की चर्चा की है।'

'कौन से स्तंभ में?'

'अपनी दैनन्दिनी में। तुम यूँ ही डर रहे थे।' गगन ने कहा।

'डर तो अब भी रहा हूँ। यह तो केवल आपकी कृपा का फल है जो अंक कुछ ठीक बन पड़ा है।'

गगन खिलखिला कर हँसा, 'मुझे यूँ ही यश न दिये जाओ यद्यपि मुझे इसे लेने में आपत्ति नहीं है।'

'इधर क्या कोई नया चित्र बनाया है?' रमेश ने विषय बदलते हुए पूछा।

'एक दो प्रयास तो किये हैं पर सफलता कहाँ तक मिली है, कह नहीं सकता, क्योंकि विषय नया है।'

'कौन सा ?'

'इधर जो ध्वंस-लीला संसार में हो रही है, उसी को कागज पर उतारने का प्रयत्न किया है।'

'प्रतीकात्मक ?'

'यह कहना कठिन है। तुम चल कर देखो तब बात बनती है।'

'मैं आज ही शाम को आऊँगा।'

इतने में तेज़ी से सीढ़ियाँ चढ़ने का शब्द होने लगा।

'यह नवीन होगा,' रमेश ने कहा। इसके साथ ही नवीन ने प्रवेश किया।

'वह तो होगा ही। तुम यदि न आओगे तो उसे तो पहुँचना ही होगा,' उसने घुसते ही कहना आरम्भ कर दिया। फिर सहसा उसकी दृष्टि गगन पर जा पड़ी, 'अच्छा तुम भी बैठे हो ?'

'हाँ और तुम आये भी खूब,' गगन कहने लगा, 'आज शाम को मेरे स्टूडियो में पहुँच जाना, भाभी को भी साथ लाना। रमेश तथा तारा जी भी आ रहे हैं।'

'कलाकार ने कुछ नये चित्र बनाये हैं', रमेश ने गगन की ओर से जवाब दिया, उन्हीं की प्रदर्शिनी आज होगी।'

'बस यही ?'

'यही क्यों, के० सी० दास के रसगुल्ले, द्वारकानाथ घोष की रस-मलाई और भीम नाग का संदेश भी खाने को मिलेगा।'

'तो फिर आने में किसे आपत्ति हो सकती है। हमें पहुँचा ही समझिये। मैं अब आया तो था इस रमेश से झगड़ने पर उसे शाम तक स्थगित करता हूँ।'

'क्यों ?' गगन ने पूछा।

'इसलिए', रमेश की वाणी में हलका-सा व्यंग्य था, 'कि शाम को श्रोताओं की संख्या भी पर्याप्त होगी और वे होंगे भी उपयुक्त।'

'यह कौन कह सकता है', नवीन ने जवाब दिया, 'तुम्हारे भोले भाले बाह्याडंबर किसको नहीं छल लेते।'

रमेश ने ज़रा चकित स्वर में पूछा, 'अर्थात् ?'

नवीन आधा क्षण चुप रहा फिर उसने ज़रा गंभीर वाणी में प्रश्न किया 'क्या शैला आज कल यहाँ है ?'

'शैला ?' रमेश को मानो किसी ने चाबुक मार दिया हो, 'मैं तो नहीं जानता, क्या तुमने उसे यहाँ देखा है ?'

थोड़ी देर के अनंतर गगन तथा नवीन शाम को पुनः मिलने की बात करके चले गये। रमेश के हृदय में फिर उथल-पुथल मच चुकी थी। शैला उसके जीवन में क्यों बार-बार आकर छेड़-छाड़ कर रही है। अभी तारा ने कलकत्ता में पाँव ही रखा था कि शैला का पत्र आ पहुँचा था। और अब उनकी गृहस्थी अभी ठीक ढंग से जम भी नहीं पाई कि यहाँ आ धमकी है। नवीन भूल करने वाला नहीं। यदि वह सचमुच आ गई है तो उसे क्या करना होगा। करना ! इसमें सोचने की बात ही क्या है ? शैला को स्पष्ट शब्दों में कह देना चाहिए कि वह अपना रास्ता देखे। उसके जीवन में तारा के सिवाय किसी और नारी का कोई स्थान नहीं। किन्तु क्या ऐसा कहने का साहस वह पकड़ सकता है ? पकड़ना चाहता भी है ? रमेश असमंजस में पड़ गया और उसने एक दीर्घ निःश्वास ली। कौन जाने शैला उसको किस दलदल में फाँसना चाहती है। वह कमरे में टहलने

लगा। क्या सारा दोष शैला का ही है ? क्या वह पूर्णतया निर्दोष है ? क्या सचमुच शैला की स्मृति उसके मन से मिट चुकी है ? यदि नहीं तो फिर ?

ठीक उसी समय उसके टेलीफोन की घंटी ज़ोर से बज उठी, वह अन्यमनस्क भाव से उठा और रिसीवर को उठा कर कान से लगाया। उस ओर की आवाज़ कान में पड़ते ही उसे ऐसे लगा मानो सारे शरीर में बिजली प्रवेश पा गई हो। आवाज़ शैला की थी।

'कौन बोल रहा है, पहचानते हो ?'

'भूल ही कैसे सकता हूँ,' रमेश की वाणी में व्यंग्य नहीं बल्कि स्नेह था, 'कब आईं ?'

'कल, पूछ-ताछ करने पर अभी तुम्हारा पता चला।'

'ठहरेंगी कुछ दिन ?'

'ठहरूँगी ?' शैला ने मानो अपने आप पर प्रश्न किया और फिर चुप हो गई। यह चुप्पी कई क्षण बनी रही। रमेश को सन्देह हुआ कि शायद उसने कनेक्शन तोड़ दिया है पर उसकी आवाज़ इस बार थिरकती हुई फिर रमेश के कान में पड़ी, 'ठहरना चाहूँगी अवश्य, पर ठहर सकूँगी यह कहना कठिन है।'

'क्यों ?'

यह टेलीफोन पर कहने की बात नहीं। क्या मैं तुम्हें मिल नहीं सकती ?'

'क्यों नहीं ?'

'मैं तुम्हें तुम्हारे घर पर मिलना चाहती हूँ। क्या यह संभव है ?'

रमेश सोच में पड़ गया 'मुझे तो…'

'मैं समझती हूँ,' शैला की वाणी बर्फ सी ठंडी थी 'तुम्हें मिसेज रमेश से पूछना होगा। पूछ लेना मैं कल फिर इसी समय तुम्हें टेलीफोन करूँगी।' इसके साथ ही शैला ने बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये और अपने निवास-स्थान का परिचय दिये बातचीत बंद कर दी।

अब! रमेश अपनी कुरसी पर आ बैठा और सोच में डूब गया। अब करे तो क्या? इस नई उलझन को कैसे सुलझावे। तारा से कैसे बात करे, क्या बतावे, क्या छिपावे। छिपाने से तो नहीं चलेगा। वह घर के अंदर चला गया।

तारा एक कुरसी पर बैठी एक पत्रिका के पृष्ठ उलट रही थी। पति को आता देखकर उसने पत्रिका एक ओर को फेंक दी और मुसकरा कर रमेश का स्वागत किया। रमेश गंभीर मुद्रा धारण किये उसके सम्मुख कुरसी पर बैठ गया।

'किस सोच के सागर में डूबे हो?' तारा ने जरा परिहासात्मक स्वर में पूछा, 'क्या मंत्रणा करने आये हो?'

'एक तो सूचना है, दूसरी समस्या।'

'अर्थात्?' तारा की वाणी उत्सुक हो उठी।

'सूचना यह कि गगन ने कुछ नये चित्र बनाये हैं। उन्हें दिखाने के लिए आज चाय का निमंत्रण हमें वह दे गया है।'

'मैं समय पर तैयार हो जाऊँगी, और समस्या?'

रमेश आधा क्षण चुप रहा फिर एक एक शब्द को तौलता हुआ बोला, 'अभी मुझे शैला का टेलीफोन आया था।'

'शैला का ?' तारा ने विस्मित स्वर में पूछा।

'हाँ, और वह मुझसे मिलना चाहती है।'

'मिल आओ।'

'पर वह मुझे यहाँ घर पर मिलना चाहती है।'

घर पर! तारा गहरे सोच में डूब गई। यह क्यों? शायद मुझसे मिलना चाहती है, अपने प्रतिद्वन्द्वी की थाह पाना चाहती है। उसका मन स्पष्ट नहीं। भागने से तो नहीं चलेगा। मुझे उसकी चुनौती स्वीकार करनी होगी।

'कोई बात नहीं, आने को कह दो।' तारा पति को चीरती हुई दृष्टि से देखती हुई बोली।

---

## पैंतीसवाँ परिच्छेद

शाम को जब रमेश तथा तारा गगन की चित्रशाला में पहुँचे तो नवीन और प्रतिमा आये हुए थे। वे तीनों तीव्र वादविवाद में उलझे हुए थे। नवागंतुकों के घुसते ही वादविवाद बन्द हो गया। गगन तथा नवीन अपने-अपने स्थान से उठ खड़े हुए। तारा प्रतिमा के पास वाली कुरसी पर जा बैठी। इसके अनंतर उन तीनों ने भी इधर-उधर बिखरे पड़े स्टूल आदि सँभाल लिये।

'विवाद का विषय क्या था, मैं पूछ सकता हूँ?' रमेश ने प्रश्न किया।

'तुम' नवीन ने जवाब दिया।

'मैं?' रमेश मुसकराया, 'मेरा व्यक्तित्व बड़ी तेजी से बढ़ रहा है,

ऐसा मालूम देता है।'

'बढ़ रहा है अथवा घट रहा है यह कौन कह सकता है। इतने न उड़ो रमेश।'

रमेश किंचित् लज्जित हो गया, अब की तारा बोली, 'व्यक्तित्व महत्त्व अवश्य प्राप्त कर गया है, अन्यथा इतने बड़े व्यक्ति क्यों उसकी चर्चा में दत्तचित्त होते।'

'निस्संदेह,' गगन ने तारा की हाँ में हाँ मिलाई, 'अब यह बतलाइये कि पहले चाय पियोगे या मेरी चीर-फाड़ करोगे।'

'चाय तो चलती ही रहेगी,' रमेश बोला, आप अपने चित्र पहले दिखाइये।'

'बहुत अच्छा' गगन उठ खड़ा हुआ। स्टूडियो के एक कोने में बड़े से कपड़े से ढँके कुछ चित्र रखे थे। गगन ने आगे बढ़कर उन पर से परदा हटा दिया और सब को उधर आने का निमंत्रण दिया।

वहाँ दो तो पूरे बने हुए और चार-पाँच अर्ध-निर्मित चित्र रखे हुए थे। जिस चित्र ने सर्वप्रथम सब को आकृष्ट किया उसको चित्रकार ने नाम दिया था ध्वंसावशेष। उसमें एक अर्ध नग्न युवक, जिसकी दायीं भुजा आधी बची हुई थी और पहियों से बँधी थी तथा चिथड़ों से लिपटी एक नारी अपने ढहे हुए घर की राख पर बैठे दूर क्षितिज में अस्त होते हुए सूर्य की ओर देख रहे थे। दोनों के मुखों पर निराशा तथा विस्मय मूर्तिमान थे। उनकी एक झलक से ही साफ़ पता चलता था कि अपने भाग्य के इस बाँकपन के रहस्य में उलझे हुए हैं। कल तक उनके जीवन में सुख था, उमंग थी और थी सुनहली आशा, और आज सब कुछ झुलस कर

राख का एक ढेर बन गया है। कल उनके जीवन का उदय था जिसका अस्त दूर बहुत दूर उन्हें दीखता था, पर इस युग की सभ्यता के एक ही साधन ने तितली के जीवन की तरह कुछ ही घड़ियों में उनके उदय को अस्त कर दिया। सब लोग बहुत देर तक उस चित्र को मंत्र-मुग्ध से देखते रहे। फिर तारा ने, जिसके नेत्र छलछला आये थे, एक दीर्घ निःश्वास लिया और बोली, 'भैया कितना जादू है आप की कूची में और कितना विष !'

'निस्सन्देह !' नवीन बोला।

'कलकत्ता पर निकट भविष्य में जो वज्रपात होने वाला है,' रमेश कहने लगा, 'कलाकार की दिव्य-दृष्टि ने उसी की एक झलक देखी है।'

'क्या वज्रपात अनिवार्य है ?' प्रतिमा ने चिंतित स्वर में प्रश्न किया।

'मैं तो ऐसा ही समझता हूँ,' गगन ने जवाब दिया।

'यह चित्र सचमुच अनायास आने वाले मेरे दुःस्वप्नों की प्रेरणा का फल है। कहाँ तक सफल हुआ हूँ कह नहीं सकता।' उसने रमेश की ओर देखा।

'पूर्ण रूपेण', रमेश बोला, 'इसमें आपकी अद्वितीय कल्पना की उड़ान के अतिरिक्त निराले साहस का भी परिचय मिलता है। आप अपनी कला द्वारा भविष्य-वक्ता का रूप ग्रहण कर रहे हैं, यह निर्विवाद है।'

'धन्यवाद', चित्रकार ने कहा, 'अब ज़रा इस चित्र की ओर देखिये।'

सब की दृष्टि दूसरे चित्र की ओर जा लगी। उस चित्र का नाम था 'देशभक्त नायक'। उसमें दिखलाया गया था कि वर्दी पहने हुए एक युवक बम फेंकने वाले वायुयान से उतर रहा है। उसके मुख पर विजय खेल रही है। कुछ सुन्दर युवतियाँ, युवक और एक दो वृद्ध मुसकराते हुए उसके स्वागत के लिए खड़े हैं। चित्र से ऐसा लग रहा था जैसे पौ फट रही हो।

'तो ये सब लोग हैं प्रतीकात्मक कारक उस ध्वंसलीला के, जिसका एक रूप हमने अभी देखा है,' रमेश ने कहा।

'सब लोग?' प्रतिमा ने संशयात्मक स्वर में पूछा।

'सभी तो,' नवीन पत्नी का संशय निवारण करते हुए कहने लगा, 'उड़ाकू युवक मुख्य कारक है और शेष सब लोग जो उसे प्रोत्साहन दे रहे हैं, गौण कारक हैं।'

'ये तो हुए दो पूरे बने हुए चित्र, बाकी रहे अधूरे। उनके पूरा होने पर मैं पुनः आपको कष्ट दूँगा। अब चलिये चाय पीजिये।' गगन ने कहा।

चित्रों की चर्चा करते हुए सब लोग अपने अपने स्थानों पर आ बैठे और गगन ने नौकर को चाय ले आने की आज्ञा दी। कुछ ही क्षणों में सब के सम्मुख छोटी तिपाइयाँ रख दी गईं और देखते ही देखते चाय का सब सामान सजा दिया गया। चाय ढालने का काम प्रतिमा और तारा ने सँभाल लिया।

जब सब के प्याले बन गये तो तारा ने पूछा, 'क्या यह विनाश-कारक लीला हमें अवश्य देखनी होगी? क्या इससे बचने का कोई साधन नहीं हो सकता?'

'साधन' गगन ने जवाब दिया, 'हो सकता था, यदि हम दासता की बेड़ियों में बँधे न होते। यदि हम स्वतन्त्र होते तो हमें क्या पड़ी थी इस साम्राज्यवादी युद्ध में उलझने की।'

'यह तो ठीक है, पर अब तो हमें यह अग्नि-परीक्षा देनी ही होगी। हमारे ऊपर किसी भी क्षण बम-वृष्टि हो सकती है।' रमेश यह कह कर चुप हो गया।

'किंतु अभी तक शत्रु चुप क्यों है ?' तारा ने पूछा।

'क्या इन अफवाहों में कुछ सचाई नहीं है कि सुभाष बोस उनके साथ हैं और इसी कारण हम बचे हुए हैं' प्रतिमा बोली।

'हो सकता है सुभाष बोस उनके साथ हों, पर हम बमों से बच न सकेंगे।' रमेश ने कहा।

'क्यों नहीं ?' नवीन के स्वर में थोड़ी उत्तेजना थी।

'इसलिए', अब के गगन कहने लगा, 'कि हमारी संगति ऐसों के साथ है जिन पर शत्रु दया नहीं दिखला सकता।'

इसके अनन्तर बातचीत का तार विविध विषयों पर चलने लगा और कुछ देर के लिए उसमें की रोचकता जाती रही। फिर नवीन एकाएक बोल उठा, मानो कोई भूली हुई बात याद आई हो। 'रमेश, भला शैला का कुछ पता चला ? क्या वह यहीं है ?'

रमेश को यह प्रसंग अच्छा न लगा, पर जवाब तो उसे देना ही था, 'हाँ तुम ठीक कह रहे थे। वह आज कल यहीं है।'

'क्या तुमने भी उसे देखा है ?'

'देखा तो नहीं, पर टेलीफोन पर बातचीत हुई है।'

'अच्छा ?'

'और भैया', इस बार तारा ने कहा, 'कल वह हमारे यहाँ आ रही है।'

'तुम्हारे यहाँ ?' प्रतिमा ने विस्मित स्वर में कहा।

'हाँ !'

'रमेश, क्या तुम उसको अब घर ला रहे हो ?' नवीन की वाणी में थोड़ा क्रोध था।

इससे पहले कि रमेश कुछ कहे तारा ने कहना आरम्भ कर दिया, 'ये नहीं ला रहे। वह स्वयं आना चाहती है और मैं भी अपनी उत्सुकता शांत करना चाहती हूँ। कल देखूँगी इनकी शैला और उसका रंग-ढंग।' तारा मुसकराई।

'मेरी शैला !' रमेश ने बात टालने का प्रयत्न किया।

'तुम्हारी नहीं तो क्या हमारी ?' नवीन का स्वर अभी तक तेज था, 'भाभी, तुम्हारा निश्चय साहस का परिचायक है। पर मैं तुम्हें चेता देना आवश्यक समझता हूँ कि तुम्हें विशेष सावधान रहना होगा।'

'धन्यवाद,' तारा बोली।

'बात का बतंगड़ न बनाओ,' रमेश जरा खीझ कर कहने लगा, 'मेरी नैतिकता का भी कुछ मूल्य आँको।'

'तुम इस परीक्षा में हिमालय की भाँति अचल रहो, यही हम चाहते हैं, पर मानव-हृदय दुर्बल है, उसमें निरंतर शक्ति-संचार की आवश्यकता है, इसे न भूलना।' गगन ने गंभीर स्वर में कहा।

नवीन के होंठों पर विजय-हास खेल उठा, 'यही तो मैं कहता हूँ।'

'तुम ? स्वप्न में भी वाणी की इस ऊँचाई को तुम नहीं छू सकते।' रमेश ने कलाई पर बँधी हुई घड़ी की ओर देखा।

नवीन क्रोध से झल्ला उठा पर इससे पूर्व कि वह कुछ बोले प्रतिमा बोल उठी, 'समय सचमुच बहुत हो गया है। अब सभा विसर्जित होनी चाहिए।'

'थोड़ी देर तो और बैठो।' गगन ने कहा।

कुछ देर वे और बैठे अवश्य, पर फिर बैठक जम न सकी और कुछ क्षणों के अनंतर सब ने अपने अपने घर की राह ली।

---

## छत्तीसवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन ठीक समय पर शैला ने टेलीफोन किया।

'क्या निश्चय हुआ?' शैला ने पूछा।

'स्वागतम्?' रमेश ने जवाब दिया।

'सचमुच?' उसकी वाणी से किंचित् आश्चर्य भासित होता था, 'बिना हिचकिचाहट के मान गई?'

'हाँ'

'मैं आज शाम को आ सकती हूँ?'

'अवश्य'

'चाय मिलेगी?' यह स्पष्ट हो रहा था कि शैला अपने ऊपर प्रभुत्व पाने में प्रयत्नशील थी।

'क्यों नहीं?'

'तुम्हारी जिह्वा को आज ताला क्यों लग रहा है। एक दो शब्दों के उत्तर के अतिरिक्त भी तो कुछ बोलो।'

'मिलने पर।'

'बहुत अच्छा।' शैला ने खीझकर रिसीवर रख दिया। रमेश मुसकराया और घर के अन्दर चल पड़ा।

शैला रिसीवर रख कर कुछ क्षण सोच में डूबी रही, धीरे धीरे अपने कमरे की ओर चल दी। इस बार शैला होटल में नहीं बल्कि एक क्लब में ठहरी थी। कमरे में पहुँच कर उसने दरवाजा बंद कर दिया और एक आराम कुरसी पर आँखें मूँद कर जा बैठी। वह क्यों मृगतृष्णा के पीछे दीवानी हो रही थी, वह सोचने लगी। रमेश के और उसके मध्य में वह अंतर था जो सीमा में बाँधा न जा सकता था। उसके लाख यत्न भी शायद उस अन्तर को कम न कर सकें। फिर इस सब कुछ से लाभ? हृदय-लीला में लाभ-हानि के लिए स्थान कहाँ, यह माना। यह भी ठीक कि मन तो मनमानी करेगा ही किंतु उसे वश में रखना भी तो उचित है? तो अभी इस खेल को खत्म कर दूँ? पर क्या यह मुझसे हो सकेगा?

शैला कुरसी से उठ खड़ी हुई और कमरे में टहलने लगी। नहीं, अब उसके पग पीछे न जा सकेंगे। उसके आनन्द का पथ ही यही है। यदि वह असफल भी हो गई तो उसे दुख न होगा, किंतु ऐसा होगा ही क्यों? वह अवश्य सफल होगी। इस भाव ने उसमें स्फूर्ति का संचार किया। शायद रमेश और उसकी पत्नी उसी की चर्चा कर रहे हों। यह सोचती हुई वह तैयार होने के लिए शृंगार-गृह की ओर बढ़ गई।

रमेश और तारा निस्संदेह उस समय उसी की चर्चा छेड़े बैठे थे।

'कहने को तो मैंने कह दिया था कि उसे आने दो', तारा संदिग्ध स्वर में कह रही थी, 'पर अब समझती हूँ यह मेरा दुस्साहस था।'

'इसीलिए तो मैंने तुमसे पूछा था।' रमेश का स्वर क्षमात्मक था।

'इसके लिए कृतज्ञ हूँ', तारा ने अकारण व्यंग्य किया। वह अपने आप पर खीझ रही थी। रमेश ने चकित होकर पत्नी की ओर देखा। उसकी खीझ और भी बढ़ गई। वह बोली, 'यूँ देखने से तो नहीं चलेगा।'

'मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा', रमेश की आवाज बर्फ सी ठंडी थी, 'मेरा दोष?'

'यही कि तुम दूसरी स्त्री की चुनौती लेकर मेरे पास आये।' तारा मुसकराई।

'चुनौती?'

'हाँ, कोई बात नहीं, आने दो। मैं ज़रा तैयार हो लूँ।'

वह उठ कर दूसरे कमरे में चली गई। रमेश अपने दफ्तर की ओर चल दिया। दफ्तर में पहुँचकर रमेश शिथिल-सा अपनी कुरसी पर जा बैठा। पास की मेज़ पर दो तीन लेखों की पांडुलिपियाँ पड़ी थीं। वह उनमें से एक को उठाकर उसमें खो जाने की कोशिश करने लगा। पर कहाँ! एक-एक वाक्य को दो-दो बार पढ़ जाने पर भी उसकी समझ में कुछ नहीं आता था। उसने झुँझला कर पांडुलिपि को मेज़ पर पटक दिया। कलम पकड़ने की होश नहीं और कला पर लिखने जा रहे हैं। उठकर लंबे-लंबे डग भरने लगा। उसने क्यों खामखाह यह झंझट खड़ा कर दिया। यदि शैला से मिलना ही था तो उसे घर में लाने की क्या जरूरत थी, तारा के सम्मुख। इस विषमता से बचना चाहिए था। पर उसका इसमें क्या दोष! उसके द्वारा यह विषमता तो पैदा हुई नहीं। अब क्या हो सकता था, अब तो इस टेढ़ी परीक्षा से गुजरना ही होगा। वह पुनः अपनी कुरसी पर

जा बैठा और शैला की प्रतीक्षा करने लगा।

उसे यूँ बैठे कुछ ही समय बीता था कि तारा आ पहुँची। वह एक चंपई रंग की सुनहले किनारे वाली साड़ी पहने हुए थी। जंपर भी सुनहला ही था? माँग में सिंदूर आवश्यकता से अधिक भरा हुआ था। माथे की बिंदी पर विशेष ध्यान दिया गया था। वह चुपके से आकर पति के निकट वाली कुरसी पर बैठ गई। रमेश ने पत्नी को सिर से पाँव तक देखा और मन ही मन पहले थोड़ा मुसकराया फिर सहसा उसके मन ने तारा की विजय के लिए भगवान से प्रार्थना की।

कुछ देर दोनों चुप रहे फिर तारा की दृष्टि मेज़ पर पड़े हुए बिखरे पन्नों पर जा पड़ी, 'यह क्या बिखरा पड़ा है?'

'एक लेख।'

'क्यों पसंद नहीं आया?'

'बिलकुल नहीं। बे-सिर-पैर की चीज़ है।'

तारा ने उठकर उन पत्रों को इकट्ठा कर लिया और उड़ती हुई दृष्टि से उन्हें पढ़ने लगी। कुछ ही क्षणों में लेख ने उसे आकर्षित किया और पति के देखते ही देखते वह एक-एक पन्ना पढ़ती चली गई। लेख को समाप्त करके उसने ढंग से उसे मेज़ पर रख दिया। रमेश की ओर देखा और पूछा, 'क्या तुमने सचमुच यह लेख पढ़ा है?'

'सारा तो नहीं, पर इधर-उधर से देखा अवश्य है।'

'तो सारा पढ़ डालो, फिर लौटाना।'

'तुम्हें कुछ जँचा?' रमेश के स्वर में दंभ था।

'जब संपादक का मन स्वस्थ न हो तो उसे किसी भी रचना का निर्णय नहीं करना चाहिये। मैं समझती हूँ तुम्हारे यहाँ बहुत कम लेख

ऐसे आते होंगे।'

'सच ?' रमेश ने कहा और लेख उठा लिया।

रमेश ने लेख पढ़ना आरंभ कर दिया और तारा ने आँखें मूँद लीं। आने वाले द्वंद्व के लिए उसे शांति के एक-एक अणु की आवश्यकता थी; उसी को संचित करने के हेतु वह चुपचाप पड़ गई।

कोई पंद्रह मिनट के अनंतर रमेश ने लेख समाप्त कर लिया और और फिर तारा की ओर देख कर बोला, 'तुम ठीक कह रही थीं। लेख निस्संदेह सुंदर है।'

तारा को यह सुन कर संतोष हुआ। उसकी मानसिक स्थिति में इसके द्वारा एक नव-स्फूर्ति सी संचारित हो गई। उसने मुसकरा कर नेत्र खोले और अपने पति की ओर देखती हुई पूछने लगी, 'इसे छापोगे ?'

'अवश्य, मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ कि तुमने इस भूल की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया।'

ठीक उसी समय उनका द्वार किसी ने खटखटाया। रमेश ने आगे बढ़ कर देखा। सामने शैला खड़ी थी। एक क्षण के लिए दोनों के नेत्र मिले। रमेश ने उसे भीतर आने का संकेत किया। इस बीच में तारा भी शैला के स्वागत के लिए उठ खड़ी हुई।

शैला ने दूध सी श्वेत बहुत बढ़िया रेशमी साड़ी पहन रखी थी। जंपर काला और पूरी आस्तीनों का था। माथे पर बिंदी थी और सिर को भली भाँति साड़ी के छोर से ढाँपा हुआ था। चेहरा रंग रोगन से अछूता था। उसने कमरे में घुसते ही तारा को हाथ जोड़ कर मंद मुसकान से नमस्कार किया। प्रति नमस्कार करते हुए तारा ने शैला को नख से शिख तक देखा। इस बीच में शैला ने भी तारा के एक-

एक अंग का निरीक्षण कर लिया था । आधा क्षण दोनों नारियाँ चुपचाप खड़ी मानो एक दूसरे को तोलती रहीं । फिर तारा बोली 'आने के लिए धन्यवाद ।'

'यह अवसर प्रदान करके आपने मुझे मोह लिया' शैला मुसकराई, 'आपके दर्शनों ने मुझे कृतार्थ कर दिया ।'

'आपसे मिल कर मुझे बहुत खुशी हुई, विशेष कर इसलिए कि जैसा सुना था वैसा ही पाया ।' तारा ने कहा ।

'कैसा सुना था आपने ?' शैला ने किंचित् चिंता मिश्रित उत्सुकता से पूछा और रमेश की ओर, जो चुपचाप खड़ा था, देखा ।

'क्या यहाँ खड़े खड़े ही बातचीत चलेगी ?' रमेश कहने लगा, 'क्यों न भीतर चलें ?'

'चलिये ।'

शैला और तारा साथ साथ और उनके पीछे रमेश बैठने वाले कमरे की ओर चल पड़े । जब वे अपने अपने स्थानों पर बैठ गये तो शैला ने फिर पूछा, 'अब कहिये कैसे पाया आपने मुझे ?'

'ओस सी निर्मल, हिम सी श्वेत और मधु सी मधुर ।'

शैला खिलखिला कर हँसी, 'क्या आप कविता भी करती हैं ?'

'अभी तक तो नहीं, पर कौन जाने ऐसी मानसिक स्थिति भी हो जाय कि भाव आहों का रूप प्राप्त कर लें । तब कविता करने के अतिरिक्त कोई चारा ही न होगा ।'

शैला का खयाल न था कि तारा की जिह्वा इतनी चतुर होगी, इसलिए वह उसका जवाब सुनकर थोड़ा चकित हुई, पर अपने भावों को छिपाती हुई बोली, 'ऐसी परिस्थिति में तो आप कविता से दूर ही रहें

तो अच्छा है।'

'यदि आप जैसे मित्रों की कृपा बनी रहे तो शायद कविता का संसार मुझे न देखना पड़े।'

रमेश मंत्र-मुग्ध सा इन दोनों स्त्रियों की बात सुन रहा था। दोनों के मधुर वाक्यों के भीतर कितना बारूद भरा हुआ था, वह भली भाँति जानता था। मालूम नहीं कब विस्फोट का रूप धारण कर ले इसी से वह डर रहा था। वैसे उसका भय निर्मूल था। दोनों ही रमणियों पर इतना सांस्कृतिक रंग चढ़ चुका था कि विस्फोटात्मक द्रव्य हृदय के अंदर अग्नि प्रज्वलित करके ही रह जाता था। इसी कारण उनका द्वंद्व इतना संतुलित था कि हार-जीत का निर्णय कठिन था। यदि उनमें से एक भी कहीं एक क्षण के लिए मस्तिष्क पर से प्रभुत्व खोने वाली होती तो दूसरी तुरंत उस भूल का लाभ उठा लेती। पर यह सम्भव न था।

'कविता का संसार, कला का संसार, इनसे आप दूर ही कहाँ है?' शैला ने कहा।

'कला का संसार अवश्य मेरे निकट, बहुत निकट है,' तारा खुलकर मुसकराई, 'पर यह निकटता जल में कमल के सदृश है। कला से मैं अभी तक अछूती हूँ।'

इसके अनंतर नौकर ने चाय तैयार हो जाने की सूचना दी। तारा ने उसे वहीं बैठने वाले कमरे में चाय ले आने का आदेश दिया। पाँच ही मिनट में नौकर ने छोटी तिपाइयों पर सारा सामान लगा दिया और तारा ने सुघड़ता से सबके लिए चाय ढाल दी।

चाय का प्याला हाथ में पकड़ते हुए शैला ने रमेश से पूछा,

'आप का पत्र कैसा चल रहा है ?'

'अच्छा ही समझो ।' रमेश ने जवाब दिया ।

'कितने अंक तुम्हारे हाथ से निकल चुके हैं । मुझे एक दो अंक दिखाना तो सही ।'

'सात-आठ अंक । जाते समय सभी लेती जाना ।'

'बहुत अच्छा' शैला ने कहा और फिर चाय पीने लगी ।

अब बातचीत का सिलसिला नित्य प्रति की राजनीति तथा युद्ध संबंधी विषयों पर चल पड़ा । कलकत्ता कब तक बम-वर्षा से सुरक्षित रह सकता है, यह प्रश्न स्वभावतया पुनः उठ खड़ा हुआ ।

'कब तक यह कहना तो कठिन है', शैला कहने लगी, 'पर जहाँ तक मैं समझती हूँ अब इसमें 'विलंब नहीं । हो सकता है कल ही बम पड़ जायें ।'

'कल तो शायद न पड़ें पर अब 'दिनों की ही देर है' रमेश ने कहा ।

'क्या इसलिए कि पश्चिमी युद्ध की प्रगति में इससे धुरी राष्ट्रों को प्रोत्साहन मिलेगा' तारा बोली ।

'निस्संदेह' शैला ने तारा की ओर ध्यान से देखा । तारा मुसकराई और शैला की दृष्टि उस पर से हट गई ।

जब चाय समाप्त हो गई तो शैला उठ खड़ी हुई ।

'चल दीं ?' तारा ने पूछा ।

'हाँ ।'

'इतनी जल्दी ?'

'हाँ, मुझे एक जगह जाना है । इस चाय और स्वागत के लिए

अनेक धन्यवाद ।'

'आभारी तो मैं हूँ कि आपने यहाँ तक आने का कष्ट उठाया ।'

शैला ने हाथ जोड़कर दोनों को नमस्कार किया और धीरे-धीरे पग रखती हुई चल दी ।

जब वह सड़क पर जा पहुँची तो तारा ने कहा, 'अब यहाँ नहीं आयेगी ?'

क्या मतलब ?' रमेश ने पूछा ।

'अब तुम्हारी दावत किसी होटल आदि में ही करेगी ।'

'क्यों ?' रमेश हैरान था ।

'इसलिए कि जो कुछ वह यहाँ करने आई थी कर नहीं सकी ।'

'वह क्या करने आई थी ?'

'विजय ।'

'विजय ?' मैं समझा नहीं ।

'कभी समझ जाओगे । मैं नौकर को सामान उठाने के लिए कह आऊँ ।' तारा तेज़ी से कमरे से बाहर चली गई । रमेश चकित सा उसकी ओर देखता रहा ।

———

## सैंतीसवाँ परिच्छेद

शैला सड़क पर पहुँची तो उसने ऐसे अनुभव किया मानो अंग-प्रत्यंग में पीड़ा हो । उसे समझ में नहीं आता था कि जाय तो कहाँ जाय । न क्लब में उसकी किसी से विशेष जान-पहचान थी, न कहीं और । इतने विशाल नगर में भी उसने अपने आपको बिलकुल

अकेली पाया, मित्रहीन, बन्धु-रहित। वह सोचने लगी इस प्राण-हीन जीवन से डाक्टर जीवन का साथ ही क्या अच्छा न था। यह ठीक है कि उसके साथ रह कर आत्मा दिन-प्रतिदिन नीचे गिर रही थी, किंतु वहाँ जीवन की रंगीनियाँ कितनी थीं। प्रतिदिन धन-प्राप्ति के लिए किसी नये 'जोखिम' की तलाश रहती थी। क्यों न पुनः वह वहीं चली जाय। उसका स्वागत करते हुए डाक्टर के आनन्द का पारावार नहीं होगा। पर यह विचार आते ही उसके शरीर में कँपकँपी आ गई। नहीं, यह उससे अब नहीं हो सकेगा। वह धीरे-धीरे पग रखती हुई चली जा रही थी। इतने में वह बड़े मैदान के निकट पहुँच गई। अभी सूर्यास्त में कुछ देर थी इसलिए मैदान पर पीली धूप छाई हुई थी। वह चुपके से जाकर एक बेंच पर बैठ गई।

घूमने वालों की मैदान में काफी भीड़ थी। अधिकतर उनमें से भारतीय थे पर काफी संख्या में अमरीकन सिपाही भी घूम रहे थे। कुछ देर शैला अन्यमनस्क भाव से इन लोगों की ओर देखती रही। फिर उसकी दृष्टि सहसा विक्टोरिया मेमोरियल पर जा लगी जिसने उसे चकित कर दिया। हिम सी श्वेत वह इमारत धूम्र सी काली कर दी गई थी ताकि उड़ाकू बममारों की दृष्टि से बच सके। अमरीकन सिपाही, श्याम-वर्ण विक्टोरिया मेमोरियल और स्थान-स्थान पर खोद दी गई हुई खाइयाँ, इन्हें देख कर कौन नहीं कहेगा कि कलकत्ता का हवाई-युद्ध-केंद्र बनना अनिवार्य था। सरकार को हवाई आक्रमण का भय अब हर समय बना रहता है, इसमें संदेह नहीं। यदि आक्रमण होना ही है तो अब देर क्यों की जा रही है। क्या इसलिए कि हमें वह विश्वास हो जाय कि जापानियों ने यहाँ बम गिराने का

इरादा छोड़ दिया है, ताकि जब आक्रमण हो हम आश्चर्यान्वित हो जायँ। यदि आक्रमणकारियों के मन में यह बात है तो उनका विचार निस्संदेह ठीक है। युद्ध घोषणा के अनंतर जिस तरह यह नगर खाली हुआ था वह बात अब नहीं रही। धीरे-धीरे पुनः लोग यहाँ लौटने आरम्भ हो गये हैं। सुना था कि स्त्रियाँ और बच्चे यहाँ से बिलकुल चले गये थे, किन्तु अब तो वे भी लौट आये हैं, शैला को वहीं घूमने वालों की भीड़ में स्त्रियाँ तथा बच्चे दीख रहे थे। अब कुछ न कुछ अवश्य होगा, होना ही चाहिए।

अभी-अभी भय का सायरन बज उठे तो भला ये लोग क्या करें, वह स्वयं क्या करे, वह फिर सोचने लगी। हवा की भाँति भाग कर छिपने का स्थान ढूँढने लगें और क्या। और वह? वह तो वहाँ से हिलने की नहीं। इतने बड़े मैदान में कौन उस अकेली की जान लेने के लिए इतना मूल्यवान बम फेंकेगा। और यदि फेंक ही दे तो उसकी बला से। इस जीवन में कौन सी रोचकता, कौन सा आनन्द, उसके लिए रह गया था। क्या वह सचमुच मरना चाहती थी? वह उठ कर घूमने लगी। अब तक धूप लगभग जा चुकी थी और ठंढी हवा चलनी आरंभ हो गई थी। नहीं, यह जीवन यूँ ही फेंक देने वाली चीज़ नहीं! अभी तो कितने ही सुंदर सपनों को उसे सत्य करना है। चाहे और कुछ न भी हो तारा पर विजय प्राप्त किये बिना वह संसार न छोड़ सकेगी। पर क्या वह जीत सकेगी? पर यह काम उतना सुगम न था जितना उसने आज दुपहरी ढलने तक समझ रखा था। टहलते-टहलते उसके पग तेज हो गये। यह ठीक ही तो है। दुर्गम अड़चनों को पार करके प्राप्त होने वाली विजय का रस ही निराला होता है। पर क्या यह

उसके लिए उचित है। उचित ? जहाँ समस्त जीवन की प्रसन्नता का प्रश्न हो वहाँ पुरातन नैतिकता का क्या काम ? और फिर हृदय की फड़फड़ाहट को कैसे सँभाल सकती थी। मन की मनमानी से पार पाना उसके बस की बात नहीं। वह रमेश के लिए मचल चुका है। रमेश को उसे प्राप्त करना ही होगा चाहे लाख तारायें उसका राह रोक कर खड़ी हो जायँ। यह सोचते सोचते उसके अंदर आत्म-विश्वास की एक अनूठी लहर दौड़ गई और अपने भविष्य के सुनहले स्वप्न बुनती हुई वह पुनः अपनी बेंच पर चली गई।

इतने में दो महिलाएँ घूमती-घामती शैला की बेंच पर आ बैठीं। उनमें से एक तो युवती थी, दूसरी अधेड़ अवस्था की थी। उन दोनों की जिह्वा कैंची की तरह चल रही थी। इसने शैला के मानसिक संतुलन को, जिसे उसने विशेष यत्न से प्राप्त किया था, फिर खराब कर दिया। कुछ क्षण तो वह संतोष का घूँट पी कर बैठी रही, पर जब उससे न ही रहा गया तो वह उठ खड़ी हुई।

'चल दीं ?' युवती ने पूछा।

'शायद हमने आपको भगा दिया' प्रौढ़ा बोली।

शैला मुसकराई, 'नहीं, मेरा समय हो चुका। मुझे एक जगह पहुँचना है।'

उनसे पीठ मोड़ कर वह द्रुत गति से चल दी। किधर ? वह स्वयं न जानती थी, पर उसके पग अनजाने ही उसकी क्लब की ओर बढ़ चले थे। इसी बीच में अंधकार हो चला था। जब वह बड़ी सड़क पर पहुँची तो बत्तियाँ जल चुकी थीं। उनकी पीत अध-छिपी ज्योति के सहारे वह सड़क के किनारे-किनारे चल पड़ी। कुछ ही

अंतर देकर एक के बाद एक कभी ट्राम, कभी बस, उसके दायें-बायें होकर निकल जाती थी। इससे उसके भावों में छेड़-छाड़ होती और वह चौंक उठती। उसकी क्लब वहाँ से दूर न थी और प्रत्येक पग उसे उसके निकट ले जा रहा था। पर वह यह न चाहती थी। उसकी यह इच्छा थी कि उसकी क्लब मृगमरीचिका का रूप धारण कर ले और समस्त रात्रि भर वह उसके पीछे भागती हुई थक कर चूर हो जाय। इतनी चूर कि प्रातः होते ही उसके नेत्र स्वयमेव मुँद जायँ। पर उसके भाग्य में यह कहाँ! वह इन्हीं विचारों में तन्मय थी कि उसे क्लब का फाटक नज़र आया। उसने दीर्घ निःश्वास लिया और उसकी ओर बढ़ गई।

ठीक उसी समय भय का सायरन बज उठा। एकाएक सब बत्तियाँ बुझ गईं। चारों ओर अंधकार फैल गया। चाँद और तारों की धुँधली सी ज्योति का हलका-सा सा उजला उस अंधकार से लड़ने का विफल प्रयास कर रहा था। लोग तेज़ी से भागने लगे, अपने छिपने का स्थान ढूँढने के लिए। शैला कुछ देर चुपचाप वहीं की वहीं खड़ी रही। फिर छिपने का स्थान ढूँढने की बजाय क्लब के लॉन की ओर चल दी। लॉन के किनारे एक बेंच पड़ी थी वह जाकर उस पर बैठ गई और उसके नेत्र आकाश पर जा लगे। शायद उसे शत्रु के वायुयान दृष्टिगोचर हो जायँ इसलिए उसकी दृष्टि आकाश का कोना कोना ढूँढ रही थी। उसे बैठे अभी थोड़ी ही देर हुई थी कि 'ऑल क्लीयर' का बिगुल बज उठा। जिससे यह स्पष्ट हो गया कि खतरा झूठा था। सड़क की बत्तियाँ फिर जल गईं। लोगों के घरों में भी हलकी-हलकी रोशनी हो गई। शैला निराश

होकर उठी और अपने कमरे की ओर चल दी । अभी उसने आधा ही रास्ता तय किया था कि उसे क्लब का मंत्री मिल गया । उसने ज़ोर से शैला की ओर देखा और पूछा, 'कौन, मिस शैला ?'

'हाँ, मैं ही हूँ ।'

'आप कहाँ थीं ? छिपने वाले स्थान में आपको देखा नहीं ।'

'मैं उधर लॉन में बैठी थी ।'

'लॉन में !' मंत्री के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, 'वह क्यों ? क्या जीवन से कोई मोह नहीं ?'

'बिलकुल नहीं । इसलिए बममारों के विषय में आँखों देखा ज्ञान प्राप्त करने की नीयत से वहाँ जा बैठी थी पर हुआ कुछ भी नहीं ।'

'अब हुआ ही समझो' मंत्री ने कहा और अपनी राह ली ।

शैला भी अपने कमरे में चली गई और कपड़े बदल कर बिस्तर की शरण ले ली ।

---

## अड़तीसवाँ परिच्छेद

कुछ ही दिनों के अनंतर बमों का भय यथार्थता में परिणत हो गया । उस दिन शाम को गगन रमेश के यहाँ चाय पीने गया हुआ था । चाय तो संध्या से पहले समाप्त हो गई पर उसके बाद इधर उधर की बातचीत का सिलसिला आरंभ हो गया, जिससे उसके वहाँ बैठे-बैठे रात काफी से अधिक भीग गई । आकाश में पूर्णिमा का चाँद जगमगा रहा था, तारे भी पूरे वेग से टिमटिमा रहे थे । जब गगन उठकर जाने लगा तो उसकी दृष्टि आकाश पर पड़ गई ।

'यदि जापानियों को सचमुच कलकत्ता पर हवाई आक्रमण करना है तो आज से अच्छी रात शायद ही उन्हें मिले' उसने कहा।

तारा और रमेश की दृष्टि भी आकाश पर जा लगी। रमेश ने गगन की हाँ में हाँ मिलाई, 'निस्संदेह इतनी उज्ज्वल रात्रि कभी कभी ही देखने में आती है।'

'आप आज यहीं रह जाइये' तारा ने चिंतित स्वर में कहा, 'क्या जाने आप राह में ही हों और बम बरस पड़ें।'

गगन मुसकराया, 'एक संभावना पर आपको कष्ट दे दूँ यह तो उचित नहीं, पर मुझे अब देर नहीं करनी चाहिए।'

गगन सीढ़ियों की ओर बढ़ चला। ठीक उसी समय भय का सायरन चिल्ला उठा। गगन वहीं का वहीं रह गया। सड़क की बत्तियाँ सहसा बुझ गईं। सायरन की कर्णकटु तीखी आवाज़ ने वातावरण में भय की तीखी लहर दौड़ा दी। देखते ही देखते घरों में भी अंधकार छा गया। लोग छिपने वाले स्थानों की ओर भागे।

रमेश जिस इमारत में रहता था, उसकी निचली छत के एक बड़े कमरे को 'शेल्टर' का रूप दे दिया गया था। कमरे की छत को दो-चार मजबूत खंभों का सहारा था। इधर-उधर बालू की कुछ बोरियाँ रखी हुई थीं। कुछ पानी से भरी बाल्टियाँ दीवारों पर मजबूत कीलों के सहारे टाँग दी गई थीं। एक कोने में पानी फेंकने के कुछ पंप, लोहे की टोपियाँ तथा अग्नि शांत करने का और सामान रखा था। तारा और गगन को लेकर रमेश वहीं पहुँचा। वे तीनों राह टटोलते, पहले से पहुँचे हुए लोगों से उलझते, एक खाली स्थान पर जा खड़े हुए। कुछ ही देर में वह कमरा खचाखच भर गया। बच्चों,

स्त्रियों और पुरुषों की आवाज़ों का मिश्रण कमरे के वातावरण में इधर उधर चक्कर काटने लगा। लोगों के चेहरे यद्यपि पूरी तरह नहीं दीख रहे थे पर उनकी वाणी, उनके हावभाव भय से ओतप्रोत थे। यह स्पष्ट था कि यदि उनका वश चले तो शत्रुओं के आक्रमणकारी वायुयानों से पहले ही कलकत्ता छोड़ कर भाग चलें।

'कलकत्ता कल से फिर ऊजड़ ग्राम का रूप धारण कर लेगा।' गगन ने कहा।

'निस्संदेह' तारा बोली, 'वे लोग अब यह सोच रहे होंगे कि यदि कहीं से पुष्पक विमान मिल जाय तो उसके सहारे कलकत्ता से दूर, बहुत दूर, पलक मारते ही इसी क्षण चले जायँ।'

'बात तो आपने बिलकुल ठीक कही' तारा की दाईं ओर से आवाज़ आई। उसने नेत्र फाड़कर देखा। एक प्रौढ़ावस्था की नारी बच्चा गोद में लिये खड़ी थी। उसने एक दीर्घ निःश्वास लिया और कहती चली गई 'पर हमारे भाग्य में यह कहाँ! वह सतयुग था और हम पापी रह रहे हैं कलियुग में।'

'कलियुग का पहरा ही ऐसा है!' इस बार आवाज़ थोड़े अंतर से आई और उसके साथ ही आवाज़ के स्वामी खाँसने लगे।

'फिर खाँसी शुरू हो गई?' कहने वाला स्त्री कंठ था, 'आज तुमने फिर बदपरहेजी की होगी। तुम मानने वाले किसकी हो।'

'मैंने तो कुछ भी नहीं किया।' इसके साथ ही खाँसी का वेग भी बढ़ गया।

'अब झगड़ने से क्या लाभ। यह गोली चूसो।'

इतने में कमरे के दूसरे कोने से किसी के मुँह पर चपत लगने

का शब्द हुआ और इसके साथ ही बालक के रोने की आवाज़ शुरू हो गई। उसके कंठ-स्वर में सहसा दो-तीन उसी आयु के कंठ स्वर और मिल गये। तब तो खासा शोर होने लगा। बच्चों की माताएँ उन्हें प्यार-पुचकार द्वारा चुप कराने में प्रयत्नशील हो गईं। कुछ देर में उन्हें सफलता भी मिल गई। कंठ-स्वर का स्थान बच्चों की धीमी-धीमी सिसकियों ने ले लिया जो धीरे-धीरे बंद हो गईं। इससे वहाँ एकाएक शान्ति छा गई। पर वह अधिक समय तक न टिक सकी।

'न जाने यहाँ कब तक सड़ना पड़ेगा। ऊपर चाहे चोरी हो जाय।' कहने वाले के मोटे स्वर ने कमरे की दीवारों से टकरा कर सब का ध्यान अपनी ओर खींच लिया।

'तुम मूर्ख के मूर्ख ही रहे,' किसी ने मोटे स्वर वाले को डाँट बताई, 'जब मौत सिर पर मँडरा रही हो तो किस को चोरी सूझ सकती है।'

'हम भी अद्‌भुत स्थिति में आ पड़े हैं,' गगन बहुत धीमे स्वर में बोला ताकि उसका वक्तव्य जनता की चीज़ न बन जाय, 'शब्द मुँह से पीछे निकलता है और आलोचक उसे पहले दबोच लेते हैं। आलोचक भी अज्ञात, अपरिचित।'

'बिलकुल,' तारा ने उससे भी धीमे स्वर में सहमति प्रकट करते हुए कहा, 'इसी लिए मैं चुपचाप खड़ी हूँ।'

'मेरे निकट यह जीवन का एक नवीन तथा चित्ताकर्षक अनुभव है,' रमेश की वाणी काफ़ी ऊँची उठ गई, 'हम एक दूसरे के साथ वार्तालाप का संबंध स्थापित कर रहे हैं, बिना किसी की शक्ल-सूरत देखे।'

'बहुत खूब,' तीन-चार ओर से आवाज़ें आईं; 'आप सचमुच ठीक कह रहे हैं।'

ठीक उस समय कहीं दूर बम गिरने का धमाका हुआ जिससे सारी इमारत काँप उठी। बंद किये हुए दरवाज़ों और खिड़कियों के पल्ले एक दूसरे से टकरा कर कड़कड़ाने लगे। थोड़ा-थोड़ा अंतर देता हुआ यह क्रम लगातार चलने लगा। कमरे के अंदर सुरक्षा के लिए आश्रित व्यक्तियों के हृदय धक-धक करने लगे। कभी बमों के गिरने का शब्द निकट से भी आने लगता था। जिससे यह स्पष्ट था कि बम-वर्षा एक जगह नहीं पर दो-तीन स्थानों पर इकट्ठी की जा रही थी। इससे उनके हृदय और भी दहल जाते थे। कौन जाने उनकी बारी भी आ जाय। यदि कहीं बम सीधा उस इमारत पर आ पड़े तो उन सब को तहस-नहस कर देगा, यह निश्चित था। सुरक्षा का इधर-उधर बिखरा पड़ा सामान कुछ भी लाभदायक न हो सकेगा। बातों का सिलसिला अपने आप टूट गया। भयभीत स्वर में अब अधिकतर लोग केवल ईश्वर का भजन करने लगे। इतने में एक बहुत बड़ा धमाका हुआ, मानो भयंकर भूकंप हो। इससे इमारत की नींव तक हिल गई। सब के सब लोग अपने स्थानों से उखड़ गये और अधिकतर थर थर काँपने लगे।

'यह बम तो काफी निकट गिरा लगता है' रमेश ने कहा।

'गवर्नमेंट हाउस की आज खैर नहीं,' गगन ने कहा 'धमाका उधर ही हुआ मालूम देता है।'

'अब हमारी बारी है' कोई करुण स्वर में चिल्ला उठा।

इसके अनंतर लगभग आध घंटे तक कुछ भी न हुआ। लोगों की जान में जान आने लगी और उनका आत्मविश्वास फिर जाग्रत होने लगा। ऐसी आशा हो चली कि अब शायद भय दूर का भोंपू बज उठे। सब अपने अपने घरों को जाने के लिए बेचैन हो गये। ठीक उसी समय फिर धमाका होना आरंभ हो गया यद्यपि इस बार शब्द काफी दूर से आ रहा था।

'अब आक्रमण का अंत है। ये बम जाते-जाते फेंके जा रहे हैं शायद।' रमेश ने कहा।

'ईश्वर करे ऐसा ही हो' दो तीन काँपती सी आवाजें एक साथ बोल उठीं।

रमेश का अनुमान ठीक निकला। इससे दस मिनट के अनंतर ही भय दूर का सायरन गूँज उठा। सब लोग उतावली से अपने घरों की ओर भागने लगे। रमेश भी अपनी पत्नी और गगन को लेकर धीरे-धीरे अपने स्थान की ओर चल पड़ा। कुछ ही काल में वह रक्षा-गृह खाली हो गया।

कमरे में पहुँच कर जब तारा ने बिजली की बत्ती जलाई तो गगन ने कलाई पर बंधी हुई घड़ी की ओर देखा।

'क्या बजा है?' तारा ने पूछा।

'साढ़े बारह।'

'अब आप जाने न पायेंगे। मैं यहीं आपके सोने का प्रबंध करती हूँ।' बिना गगन की अनुमति की प्रतीक्षा किये तारा घर के अन्दर चली गई और गगन टेलीफोन की ओर बढ़ गया।

'पिता जी को टेलीफोन करने चले हो?' रमेश ने पूछा।

'उन लोगों की खोज खबर तो ले लूँ और यह भी बता दूँ कि मैं अभी तक ठीक ठाक हूँ, मेरा ख्याल है एक्सचेंज अब खुल गया होगा।'

एक्सचेंज खुल चुका था और अभी तक वहाँ अधिक ज़ोर नहीं पड़ा था। इसलिए गगन को अति शीघ्र नम्बर मिल गया। दूसरी ओर से उसके पिता बोले। उनके वहाँ भी कुशल ही रही। बहुत धमाके वाला बम गर्वनर-गृह पर न गिर कर सामने वाली इमारत को विध्वंस कर गया था। हावड़ा का बड़ा पुल भी सुरक्षित था। हाँ, उससे आध एक मील से अंतर पर एक सब्जी मंडी के तहस-नहस होने की खबर उसके पिता तक पहुँच चुकी थी। पिता ने गगन को उस रात रमेश के घर ही रह जाने का आदेश दिया।

इस बीच में तारा उसके सोने का प्रबन्ध आदि कर आई थी। कुछ क्षणों के अनंतर गगन तारा द्वारा निर्दिष्ट शयन-गृह में तथा रमेश और तारा अपने सोने वाले कमरे में चले गये।

---

# उनतालीसवाँ परिच्छेद

अगले दिन रमेश अपने दफ्तर में आकर बैठा ही था कि उसके टेलीफोन की घंटी बज उठी। फोन किसने किया है इसमें उसे किंचित् भी संदेह नहीं था। इसलिए जब उसने रिसीवर उठाकर कान से लगाया तो उसे शैला की चिंतित वाणी सुन कर ज़रा भी आश्चर्य नहीं हुआ।

'तुम्हारी आवाज़ सुनकर जान में जान आई,' शैला ने कहा, और पूछा, 'रात कैसी कटी ?'

'खैरियत ही रही,' रमेश ने जवाब दिया, 'तुम्हारा क्या हाल रहा ?'

'मेरा !' शैला की वाणी में छिपा व्यंग्य टेलीफोन की तार को चीरता हुआ रमेश के कानों को बींधने लगा, 'मेरी प्रार्थना तो ईश्वर ने सुनी नहीं। मैं तो क्लब के लॉन में बेंच पर बैठी चाँद की चाँदनी तथा बम-वृष्टि के धमाकों का रसास्वादन करती रही। यह आशा भी थी कि शायद किसी एक बम की कृपा-कोर मुझ पर भी हो जाय।'

'बाहर खुले में ?' रमेश की आवाज़ के आश्चर्य में चिंता भी छिपी थी, 'तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था।'

'सच कहते हो ? यदि ये शब्द तुम्हारे हृदय से निकले हों तो मैंने रात को भूल की है, मानती हूँ। कहो, फिर कहो कि तुम मेरी बात सुन कर चिंतित हुए।'

रमेश खिल उठा। गद्‌गद स्वर में बोला, 'निस्संदेह तुमने रात ठीक नहीं किया, फिर ऐसा न करना, वादा करो।'

मधु से ओत-प्रोत स्वर में शैला बोली, 'मैं वादा करती हूँ, अब तो खुश हो ?'

'निस्संदेह।'

इसके अनन्तर कुछ देर दोनों ओर मौन रहा, फिर शैला बोली, 'तुम्हारी आवाज़ ने मुझे चिंता-मुक्त अवश्य कर दिया है पर जब तक मैं तुम्हें देख न लूँगी मुझे पूर्ण रूप से संतोष न होगा। क्या यह संभव नहीं ?'

'क्यों नहीं ? कहाँ पहुँचूँ ?'

'कब पहुँचोगे ?'

'आज्ञा मिलते ही, कहो तो अभी आऊँ, सिर के बल।'

'तो चले आओ। मैं क्लब के बाहर बड़े मैदान के सामने तुम्हारी बाट जोहूँगी।'

'मुझे आया ही समझो।'

रमेश रिसीवर रख कर तेजी से सीढ़ियाँ उतर गया। पर नीचे सड़क पर पहुँच कर रुका और कुछ सोच कर पुनः ऊपर चढ़ गया और तारा के पास पहुँचा।

'मैं एक काम से जा रहा हूँ,' तारा से बोला, 'थोड़ी देर में लौटूँगा।'

'कहाँ जा रहे हो ?' तारा ने पूछा।

'एक मित्र से मिलने,' अर्ध सत्य का सहारा लेकर रमेश ने जवाब दिया, 'अभी अभी उसका ज़रूरी टेलीफोन आया था।'

'हो आओ,' तारा ने अनुमति देते हुए कहा, 'पर लौटना जल्दी।'

'बहुत अच्छा।'

रमेश चल पड़ा हवा के घोड़े पर उड़ता हुआ। इस नये रोमांस से उसके पाँव उखड़ गये। वह क्या कर रहा है यह सोचने की शक्ति उसमें न रही। कई दिनों से मन में सुलगती हुई शैला के प्रति स्नेह की चिनगारी एकाएक प्रेमाग्नि बन कर उसके हृदय में प्रज्वलित हो उठी। वह विवाहित है और उसकी पत्नी तारा सुसंस्कृत है, सुन्दरी है, यह सब कुछ सोचने की उसे फुरसत ही कहाँ ? शैला, हृदय-हारिणी

शैला, केवल उसके एक संकेत पर जी सकती है और मर भी सकती है, वह न जानता था। ऐसी नारी के उसके प्रति ये भाव कोई साधारण बात न थी। व्यक्तित्व के प्रति सम्मान की यह भेंट अद्वितीय थी। और सच पूछा जाय तो उसी के स्नेह से प्रेरित शैला ने टेढ़ा पथ छोड़कर सीधा रास्ता पकड़ा था। ऐसी मधुर, चित्ताकर्षक, संस्कृत रमणी को आत्मोन्नति की ओर अग्रसर करने का श्रेय प्राप्त करना किसी क्षुद्र व्यक्तित्व द्वारा संभव न हो सकता था। जब तक वह मुझे देख न लेगी उसे संतोष न होगा। कितने मीठे थे उसके ये शब्द।

यह सब कुछ सोचता हुआ वह तेजी से चला जा रहा था। उसके घर से शैला की क्लब काफी दूर थी पर उसे यह ध्यान नहीं था कि बस या ट्राम में सवार हो जाय। जब वह काफी दूर तक पैदल चल चुका तो उसे सहसा ख्याल आया कि वह बस या ट्राम द्वारा शीघ्र अपने स्वप्नों की प्रतिमा के निकट पहुँच सकता था। वह ट्राम की प्रतीक्षा में ठहर गया। इतने में एक ट्राम वहाँ आकर रुकी, वह झट उसमें सवार होकर क्लब के निकट जा उतरा। शैला उसकी प्रतीक्षा में खड़ी थी। उसने जादूभरी मुसकान से उसका स्वागत किया।

'कहाँ चलोगी?' रमेश ने पूछा।

'दूर, बहुत दूर, उन उलझते हुए बादलों की ओट में।' शैला हँसती हुई रमेश का हाथ पकड़कर खींचती उसे बड़े मैदान की ओर ले चली।

'घूमोगे या बैठना पसंद करोगे?'

'बैठना।' रमेश ने कहा।

कुछ ही दूरी पर एक वृक्षों का झुरमुट था, उसके नीचे एक अधछिपी सी बेंच पड़ी थी। दोनों उसपर जा बैठे।

'अब कहो।' शैला ने रमेश के नेत्रों में नेत्र डालकर कहा।

'मैं कहने की अपेक्षा सुनना श्रेष्ठतर समझता हूँ।'

'सो तो ठीक पर मेरे हृदय में जो भाव उमड़ रहे हैं उन्हें व्यक्त करना व्यर्थ है।'

'क्यों?' रमेश के स्वर में चिंता थी।

इसलिए कि तुम बंधनों में बँधे हो और मैं हूँ पवन के झोंके सी मुक्त।' शैला ने एक दीर्घ निःश्वास ली, 'काश तुम भी मेरी तरह स्वतंत्र होते। फिर तुम और मैं दूध से श्वेत सारस के जोड़े की भाँति पवन को चीरते हुए लोक-परलोक पार करते हुए किसी नये लोक में अपना घोंसला बना लेते। पर अब'—शैला रुकी।

'पर अब क्या?' रमेश ने उसे प्रोत्साहन दिया, 'अब कुछ नहीं हो सकता क्या?'

शैला कुछ देर सोच में डूबी रही, फिर बोली, 'नहीं अब कुछ नहीं हो सकता।'

'क्यों?'

'इसलिए कि कुछ कर गुज़रने के लिए जिस नैतिक साहस की आवश्यकता होती है वह तुममें नहीं', यह कहते ही शैला खिलखिला कर हँस दी, 'पर छोड़ो इन बातों को, इनपर फिर कभी विचार करेंगे। भला यह तो बताओ रात की बम-बारी इस बड़े मैदान के कान में भी पड़ी होगी।'

'अवश्य, क्योंकि मेरे निकट यह मैदान उतना ही जीवित है जितने हम।'

'तो इस समय यह क्या सोच रहा होगा ?' शैला ने पूछा।

'मैं समझता हूँ इस समय इसका हृदय उनके प्रति उमड़ रहा होगा जो रात को बम-बारी का शिकार हुए । यह सोच रहा होगा कि यदि वे समस्त बम इसके विशाल वक्षस्थल पर आ गिरते तो कितना भला होता। एक तो कई लोगों की जानें बच जातीं और दूसरे उन बमों के निर्माणकर्ताओं को उनकी व्यर्थता का ज्ञान हो जाता।'

'बहुत खूब,' शैला ने प्रशंसात्मक दृष्टि से रमेश की ओर देखा, 'किंतु ऐसा न हो सका। ये बम व्यर्थ न जा सके। है न ठीक ?'

'यदि उन्होंने हमारे हृदय में भय का बीज बो दिया है तब तो निस्सन्देह वे सफल हो गये, पर यदि अनेक हत्याएँ कर देने के अनंतर भी वे हमें भय-ग्रस्त नहीं कर सके तो वे बिलकुल व्यर्थ गये।'

'पर तुम्हारे प्रश्न का ठीक उत्तर क्या है । क्या वे सफल हुए या विफल ?'

रमेश ने उदास स्वर में कहा, 'पूर्ण रूप से सफल । वह देखो सड़क की ओर।'

शैला ने उधर दृष्टि दौड़ाई । लोगों के झुंड के झुंड कलकत्ता से पीठ मोड़ कर चले जा रहे थे । कई मोटरों-टैक्सियों पर सामान लादे भाग रहे थे । कइयों का सामान बंद गाड़ियों की छतों पर लदा था और वे गाड़ियों के भीतर से भय-ग्रस्त झाँक रहे थे और अनेकों थोड़ा बहुत सामान सिरों, कंधों पर लादे पैदल ही चले जा रहे थे । शैला कुछ देर उनकी ओर देखती रही फिर उधर से मुँह मोड़ लिया । थोड़ा चुप रह कर वह बोली, 'मैंने अभी तक चाय भी नहीं पी।'

'क्यों ?' रमेश ने आश्चर्य से पूछा।

'बस भूल ही गई।'

'चलो उठो, पहले इसका प्रबन्ध करें।'

'पर क्या उस दिन वाली देसी मिठाई की दुकान आज खुली नहीं होगी।'

'आशा तो नहीं, पर यदि चाहो तो चल के देख सकते हैं।'

यह कहते ही रमेश उठ खड़ा हुआ पर शैला न मानी, बोली 'फिर जाना व्यर्थ है। तुम बैठ जाओ। दस मिनट के अनंतर मैं अपनी क्लब में जाकर ही चाय आदि ले लूँगी।'

रमेश पुनः बैठ गया। दस मिनट तक शैला ने उसे हृदय की ही नहीं बल्कि इधर-उधर की बातों में ही उलझाये रखा; फिर रमेश को उठने का संकेत किया और दोनों चल पड़े तथा सामने वाले ट्राम स्टैंड पर जा पहुँचे। ट्राम के आने पर रमेश उसमें सवार हो गया और शैला पुनः मिलने का वादा लेकर धीरे-धीरे अपनी क्लब की ओर बढ़ गई।

'मिल आये मित्र से ?' रमेश के घर में पाँव रखते ही तारा ने पूछा।

'हाँ।'

'कौन था भला तुम्हारा यह मित्र, मैं पूछ सकती हूँ, जिसने दिन चढ़ते ही इतनी तेजी से तुम्हें अपनी ओर खींचा।'

'रमेश ने कुछ जवाब न दिया, सोच में पड़ गया। तारा मुसकराई, 'छिपाने से तो नहीं चलेगा। तुम्हें बताना ही होगा।'

'जानता हूँ', रमेश स्वर में गंभीरता भरते हुए कहने लगा, 'पर सुन

कर शायद तुम भ्रम का शिकार हो जाओ।'

'मेरी चिंता न करो, कहो।'

'मैं शैला के यहाँ गया था।' रमेश ने अपने ऊपर प्रभुत्व पाते हुए कहा और ध्यानपूर्वक पत्नी की ओर देखने लगा।

तारा के अंतर जगत में क्या हुआ यह तो भगवान जानें किंतु उसने बाह्य हाव-भाव द्वारा ऐसा प्रदर्शित किया मानो कोई विशेष बात नहीं हुई। शान्त स्वर में पूछने लगी, 'क्या तुम्हारे लिए यह उचित था?'

रमेश का ख्याल था कि उसके शैला से मिलने की सूचना पा कर तारा वह बवंडर मचा देगी जिसकी उड़ती हुई धूल में शायद वह अपने कर्म के अनौचित्य को छिपा सके। किंतु उस शांत मुख का और तीर की नोक सी तीखी आँखों का वह क्या जवाब दे।

'उचित!' रमेश के स्वर में थोड़ी खीझ थी।

'हाँ मेरे स्वामी,' यह कहना कि तारा के स्वर में व्यंग्य था कठिन था, 'खीझने से तो ठीक नहीं होगा।'

'खीझ कौन रहा है?' रमेश अपने क्रोध को दबाता हुआ बोला, 'मुझे तो इसमें कोई अनौचित्य दीखा नहीं।'

'यदि यही बात है तो मुझे बता कर क्यों नहीं गये। मेरे साथ झूट क्यों बोले?'

'झूठ तो नहीं बोला।'

'झूठ न सही, अर्ध सत्य तो था।' तारा की वाणी बिच्छू के डंक-सी दंशित करती हुई रमेश के कानों में प्रवेश करने लगी, 'अर्ध सत्य के सहारे तुम चल न सकोगे। पग-पग पर गिरोगे। या तो पूर्ण रूप से

झूठ बोलना सीखो या सीधा सत्य अपनाओ। मैं दूध पीती बच्ची नहीं हूँ।'

रमेश ने कुछ जवाब न दिया। तारा ने भी जवाब के लिए आग्रह न किया। कुछ क्षण वहाँ खड़ी अवश्य रही, फिर वहाँ से खिसक गई।

---

# चालीसवाँ परिच्छेद

बम-वृष्टि अगले दिन भी हुई और उससे अगले दिन भी। लोगों के मन पर आतंक छा गया। जो सुगमता से कलकत्ता छोड़ सकते थे वे पहले दिन ही भाग गये। बाकी लोग अपनी कठिनाइयों से ज्यों-ज्यों पार पाते जाते थे खिसकते जाते थे। यहाँ तक कि तीन-चार दिनों के भीतर कलकत्ता की आबादी बहुत कम हो गई। अब केवल या तो वे लोग रह गये जिनके लिए कलकत्ता छोड़ना संभव न था या वे जो आदर्शवाद से प्रेरित हठीले थे। पहले वर्ग के अधिकतर लोग थे सरकारी नौकर तथा बड़ी-बड़ी व्यापारी कोठियों के स्वामी तथा कर्मचारी और दूसरे वर्ग में आते थे रमेश, गगन, रमेश का पानवाला तथा अन्य इसी भाँति के व्यक्ति। ये सब लोग इस भगदड़ को देख कर दुखी हो रहे थे, पर इनके किये क्या हो सकता था। भगदड़ का मूल यथार्थ भय था, इसमें तो कोई संदेह नहीं और सामान्य जनता को उस भय से ऊपर उठने का उपदेश देकर अपने दृष्टिकोण से सहमत करना बड़े से बड़े महापंडित के लिए भी संभव न था। इसलिए इन आदर्शवादियों के दल ने उस ओर विशेष प्रयत्न न किया। वे अपने देशवासियों की इस दुर्बलता से अपने हृदय को ही जलाते रहे।

तारा के लिए तो हृदय के जलने का और भी कारण आ उपस्थित हुआ था और उसकी दृष्टि में वह सभों से कहीं अधिक चिंता-जनक था। शैला से रमेश की पुनः मैत्री उसे शूल की भाँति दुखी कर रही थी। उसने समझा था कि कम बोलने और किंचित् व्यंग्य बाणों से पति को बींधने से वह उसे शैला से विमुख कर सकेगी, किंतु यह उसकी भूल थी, यह प्रतिदिन स्पष्ट हो रहा था। यह ठीक था कि रमेश उन तीन-चार दिनों में शैला से मिलने नहीं गया था पर टेलीफोन पर उसकी बात-चीत न हुई हो यह बात न थी। एक दिन तो तारा के बैठे-बैठे ही शैला का टेलीफोन आ गया और रमेश को तारा के सामने ही बात करनी पड़ी थी। इसने तारा को और भी उद्विग्न कर दिया था। पति के जो हाव-भाव उसने तब देखे थे वे बहुत भयोत्पादक-थे। यह कि शैला भली भाँति रमेश के हृदय में पैठ गई थी लाख छिपाने पर भी वह छिपा न सका था। यदि उसके मन की गति यूँ ही चलती रही तो तारा पति को अवश्य खो देगी। शैला उन दोनों की सोने की गृहस्थी को विध्वंस कर देगी, यह निश्चित रूप से तारा ने अनुभव कर लिया था और यह भी निर्विवाद था कि जब तक कोई मुख्य घटना रमेश को नहीं झकझोरेगी वह सीधे रास्ते न लग सकेगा। पर वह घटना घटे कैसे? तारा के किये कुछ नहीं हो सकता था। यह कि शैला का उसके पति के प्रति मोह स्वार्थ और इन्द्रिय सुख द्वारा प्रेरित था तारा भली भाँति जानती थी और उसे यह भी विश्वास था कि यदि रमेश को इस बात का पता चल जाय तो वह शैला की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखेगा। किन्तु किसी के समझाने से तो उसका समझना संभव न था। शैला जिस कलामय पद्धति द्वारा रमेश को

अपनी ओर आकर्षित कर रही थी उसमें इतनी चतुराई थी कि सीधे सादे रमेश को उसमें छल की छाया भी न दीखती थी। तारा इन्हीं विचारों में निमग्न थी कि सहसा रमेश वहाँ आ पहुँचा।

'कुछ सुना?' रमेश आते ही बोला।

'क्यों, क्या हुआ?' तारा ने आश्चर्य से पूछा।

'हम अकाल का शिकार होने जा रहे हैं।'

'अकाल का?' तारा कहने लगी, 'चीज़ों के दाम तो अवश्य बेतरह बढ़ रहे हैं पर मैं समझती हूँ हवाई आक्रमण के कारण ऐसा हुआ है। यह स्थिति शीघ्र ही ठीक हो जायगी।'

'ऐसी आशा नहीं है,' रमेश ने सिर हिलाया, 'प्रान्त के भीतर से जो खबरें मिल रही हैं उनसे ऐसा मालूम देता है कि चावलों का सब ओर अभाव हो गया है।'

इसके अनंतर रमेश अपने कमरे में काम करने चला गया। उस दिन न तो तारा के और न ही रमेश के मस्तिष्क में अकाल के भविष्य में बनने वाले रूप की कोई झलक आई किंतु कुछ दिन बीतने पर अकाल के रूप की विकरालता कलकत्ता में साफ दीखने लगी। सड़कों के किनारे, सार्वजनिक पार्कों में, वृक्षों की छाया में देहात के परिवार नर-कंकालों के रूप में कुछ चावलों के दानों की आशा में पहुँचे। जिन्होंने कभी माँगना सीखा न था वे कलकत्ता की सड़कों पर बेढंगे ढंग से भीख माँगने लगे। लोगों के हृदय यह दृश्य देख कर द्रवित अवश्य हुए पर लोगों के दान का अधिकतर भाग असली भिखारी जो माँगने की कला में निपुण थे छीन कर ले जाने लगे। फल यह निकला कि कलकत्ता से विशाल नगर में पहुँच कर

भी देहातियों को भरपेट भोजन न मिल सका। अकाल का अगला रूप आरंभ हुआ।

वह रूप था हमारी सभ्यता का भीषण अभिशाप। मनुष्य—पुरुष नारी तथा बच्चे—कुत्ते-बिल्लियों की भाँति तड़प तड़प कर मरने लगे। प्रतिदिन प्रातःकाल नगर की विभिन्न सड़कों पर पड़ी हुई लाशों के ढेर के ढेर कूड़ा कर्कट वाली गाड़ियों में लाद-लाद कर श्मशान भूमि पहुँचाये जाने लगे।

तब सारे देश में त्राहि त्राहि मची। सभी प्रान्त भूख से बिलखते हुए बंगाल की सहायता के लिए दौड़ पड़े। विभिन्न सभा-सोसाइटियों ने कलकत्ता में निःशुल्क लंगर खोल दिये। कलकत्ता के लोकहित चाहनेवाले भी अपने काम-काज छोड़कर आपदग्रस्त अपने बंधुओं की सहायता में जुट गये। रमेश गनन नवीन भी दिन-रात मारे मारे फिरने लगे और प्रतिमा तथा तारा भी उनका हाथ बँटाने लगीं।

और शैला ? उसने भी स्त्रियों के एक छोटे से दल का नेतृत्व ग्रहण कर लिया। फ्राक पहनना छोड़ दिया। सूती श्वेत साड़ियों को कमर में बाँध कर सारा दिन वह भी विपत्ति के मारों की सेवा शुश्रूषा में लगी रहने लगी और अपने इस रूप की झलक भी तारा रमेश और उनके मित्रों को दिखाना न भूली।

'तुम्हारी शैला तो खूब काम कर रही है,' एक दिन जब सब लोग रमेश के दफ्तर में बैठे थे तो नवीन ने कहा, 'कभी-कभी खोटा पैसा भी मजे से चल जाता है ?'

'खोटा पैसा ?' रमेश ने अपने स्वर में उदासीनता भरते हुए कहा, 'कभी अपने तंग विचारों से ऊपर उठना भी सीखो।'

'इस समय वह जो काम कर रही है,' गगन बोला, 'वह निस्संदेह सराहनीय है।

तारा के लिए यह प्रसंग प्रिय न था। उसका विश्वास था कि शैला का यह रूप स्वाभाविक न था बल्कि किसी विशेष मतलब के लिए धारण किया हुआ था, पर वह क्या कह सकती थी। उसके कथन को उसका पति ही नहीं अन्य लोग भी संदिग्ध भाव से सुनेंगे। इसलिए वह मन मार कर चुप बैठी रही, पर प्रतिमा शायद तारा के मन में उठने वाले भावों को ताड़ गई। गगन की ओर देखकर बोली, 'भैया, क्या यह बात तो नहीं कि कौवा हंस की चाल चल रहा हो।'

'क्यों?' रमेश के मुख से एकाएक निकल पड़ा। उसके स्वर में खीझ थी।

'अब मैं क्या बताऊँ क्यों!' प्रतिमा थोड़ा मुसकराई।

'मैं बताऊँ?' बंदूक से छूटी हुई गोली की भाँति नवीन बोला, 'रमेश, हम कोरे बुद्धू नहीं हैं।'

'बताओ फिर!' रमेश के स्वर में किंचित् ढिठाई थी।

नवीन मुँह खोलने ही जा रहा था कि तारा ने उसे रोक दिया, 'भैया, यदि मेरी प्रार्थना मानो तो इस प्रसंग को यहीं बंद कर दो।'

इसके अनंतर सब चुप हो गये और कुछ समय तक कोई कुछ न बोला। फिर सहसा पास की मेज़ पर पड़े टेलीफोन की घंटी बज उठी। इससे पहले कि कोई और रिसीवर की ओर बढ़े रमेश ने झपट कर उसे पकड़ लिया, यह प्रार्थना करते हुए कि कॉल शैला की न हो। पर कान से लगाते ही उसे पता चल गया कि उसकी प्रार्थना

विफल गई। तार के उस छोर से यात्रा करता हुआ मधु से ओत-प्रोत शैला का स्वर उसके कान में पड़ा। अब वह करे तो क्या और कहे तो क्या। आठ तीखे आलोचक नेत्र उसके एक-एक हाव-भाव के निरीक्षण में लगे थे, आठ खड़े हुए कान उसकी धीमी से धीमी वार्ता को सुनने के लिए दत्तचित्त थे और उसके अनंतर चार सधी हुई जिह्वाओं के शब्द-शर उसे बींधेंगे, वह खूब जानता था। आधा क्षण वह कुछ नहीं बोला, गहरे सोच में डूबा रहा, फिर उसके नेत्र सहसा चमक उठे।

'ज़रा ऊँचे बोलो' वह कहने लगा, 'मुझे कुछ सुनाई नहीं दे रहा।'

ऐसे लगा जैसे उस सिरे के टेलीफोन कर्ता का स्वर ऊँचा हो चला है।

'नहीं, मैं कुछ नहीं सुन रहा,' उसने दुहराया, 'मेरा टेलीफोन शायद खराब है। मैं थोड़ी देर में इसके ठीक हो जाने पर तुम्हें टेलीफोन करूँगा।'

रमेश ने रिसीवर यथास्थान रख दिया।

बाकी सब तो चुप रहे पर नवीन से न रहा गया, 'किसका फोन था?'

रमेश ने अपने ऊपर प्रभुत्व पाने की कोशिश करते हुए शुष्क वाणी में जवाब दिया, 'इसके पूछने की आवश्यकता थी क्या?'

'यदि यह बात है तो मैंने अपना रमेश खो दिया?' नवीन मुसकराया और उठ खड़ा हुआ।

'कैसे?' रमेश ने फिर प्रश्न किया, 'उठ खड़े हुए हो?'

'तुममें छल-कपट न देखा था सो देख कर, और उठा इसलिए हूँ कि तुम्हें टेलीफ़ोन करने के लिए एकांत चाहिए।'

'तुम आवश्यकता से अधिक क्या बात नहीं बढ़ा रहे हो?' रमेश के स्वर का ऊपरी भाग शांत था।

'हो सकता है।' उसने प्रतिमा को भी उठने का संकेत किया, 'लो नमस्कार भाभी।' तारा को उसने नमस्कार किया।

गगन भी उठ खड़ा हुआ, 'मुझे भी अब चलना चाहिए।'

गगन ने भी और प्रतिमा ने भी रमेश और तारा को नमस्कार किया और उन दोनों को चकित सा छोड़ कर तीनों चले गये।

---

# इकतालीसवाँ परिच्छेद

उन सब के चले जाने के अनंतर कुछ क्षण तक रमेश और तारा ज्यों के त्यों खड़े रहे, चुपचाप एक दूसरे का निरीक्षण करते हुए। फिर तारा मानो अपने आपसे पूछने लगी, 'अब?'

'अब क्या?' उसका पति बोला।

'यूँ कब तक चलेगा?'

'मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा' रमेश ने जरा क्रुद्ध स्वर में कहा।

'समझ ही कैसे सकते हो,' तारा शांत गंभीर स्वर में कहने लगी, 'मेरा समस्त व्यक्तित्व ही एक उझलन बन रहा है। जब तक वह न सुलझे तुमको कुछ समझा ही क्या सकती हूँ।'

'मुझे पहेलियों में न उलझाओ। सीधी बात करो। तुम चाहती क्या हो?'

'तुम्हें पाना।'

'तो क्या तुम मुझे खो चुकी हो?'

'अपने हृदय से पूछो। अभी तुम्हारा सुहृद नवीन जो बात कह गया है, उसपर विचार करो।'

'नवीन, गगन, तुम!' रमेश के लिए सँभलना अब संभव न रहा, पृथ्वी पर पैर पटक कर कहने लगा, 'मैं अब जान गया। तुम लोग जो षड्यंत्र रच रहे हो उसकी एक-एक चाल अब स्पष्ट हो रही है। पर याद रखो इससे तुम सब लोग मुझे एक निर्दोष रमणी से विमुख नहीं कर सकते, तुम्हारे अनुचित आक्रमण के कारण मैं उसे पाँव से नहीं ठुकरा सकता!'

'निर्दोष! अनुचित!'

'हाँ।' रमेश ने कहा और चुप हो गया। वह क्रोध से काँप रहा था। उसके लिए खड़ा रहना संभव न रहा। पास पड़ी हुई कुरसी पर धम से जा बैठा और आग्नेय नेत्रों से तारा की ओर देखने लगा। किन्तु वह ज़रा भी विचलित नहीं हुई, मानो शांत नेत्रों द्वारा, जिनके किनारे पर जल छलकने में प्रयत्नशील था, पति के प्रज्वलित नेत्रों की चुनौती स्वीकार कर रही हो। कुछ देर दोनों एक दूसरे को नेत्रों द्वारा तौलते रहे, फिर रमेश बोला, 'तुम चाहती हो मेरे जीवन को मरुस्थल का एक टुकड़ा बनाना।'

'मैं तो यह नहीं चाहती, किंतु एक बात निश्चित है, जो तुम्हारे नेत्रों के सामने स्वर्ग बन कर चमक रहा है वह मृगमरीचिका है।'

'अच्छा?'

'हाँ, और तप्त बालू को रौंदते हुए चाहे तुम्हारे पाँव छलनी हो

जायँ, तुम उसे पा न सकोगे। वह तुमसे दूर, दूरतर, होती चली जायगी और कालांतर में जब तुम टूटा हुआ हृदय लेकर मरुस्थल के किनारे उगे हुए अपने एकाकी खजूर के वृक्ष की छाया में बैठने के लिए लौटोगे तो वह भी झुलस चुका होगा।'

रमेश ने कुछ जवाब न दिया। उठकर कमरे में टहलने लगा फिर बोला, 'मैं जरा बाहर जा रहा हूँ।'

'कहाँ ?'

'जहाँ तुम समझती हो वहाँ नहीं, केवल घूमने।' रमेश का क्रोध फिर भड़क उठा, 'इतना विष तुम लोगों ने मेरे भीतर भर दिया है कि जब तक हवा में नहा नहीं लूँगा मेरा स्वस्थ होना संभव नहीं।'

यह कह कर खट-खट करता हुआ रमेश चल दिया। तारा ने जाकर फ्लैट का मुख्य द्वार अन्दर से बंद कर लिया और कमरे में लौट आई। कुरसी पर बैठ कर सिर मेज़ पर फेंक दिया और तब उसके नेत्रों ने आँसुओं की झड़ी लगा दी। काफी देर वह वैसे ही बैठी रही पर जब नयनोदक निकल जाने से कुछ दिल हलका हुआ तो वह सोचने लगी।

इस भाँति रोने से तो कुछ बनेगा नहीं। उलटा बिगड़ेगा। अपनी शक्तियाँ क्षीण होंगी और पति को विमुख होने का और भी बहाना मिलेगा। रोते हुए प्राणी से कौन नहीं खीझ उठता। तो लाख परिस्थिति बिगड़े वह रोयेगी नहीं, उसने निश्चय किया। कम से कम रमेश के सामने उसके नेत्रों से आँसू नहीं झरेंगे। पर वह छिनते हुए पति को कैसे बचाये। वह करे तो क्या। नहीं, उसके माता-पिता के किये कुछ न हो सकेगा। रमेश के माँ-बाप को सूचित करना

अपनी विपत्तियों को बढ़ाना होगा। हाँ, मामा जी को लिखने से शायद कुछ लाभ हो। शायद ही तो! जिसने नवीन और गगन की बातों की परवाह नहीं की वह अपने मामा की सीख कहाँ मानने चला है। और यह भी कैसे निश्चित है कि वे इस मामले में दखल देने के लिए राज़ी होंगे। नहीं वह उनको भी नहीं लिखेगी। किसी अन्य द्वारा राह पर लाया हुआ पति उसके किस काम का। एकाएक उसका आत्माभिमान जाग्रत हो उठा। नहीं, वह इस विषय में किसी के आगे सहायता के लिए हाथ नहीं फैलायगी किन्तु क्या सचमुच रमेश उसके हाथों से निकल रहा है? क्या वह भूल तो नहीं कर रही? भूल! वह उठ कर कमरे में टहलने लगी और सोच में डूब गई। भूल कहाँ? रमेश का प्रत्येक हाव-भाव प्रदर्शित कर रहा है कि उसपर वह मोहनी डाली गई है जिससे छुटकारा पाना सुगम नहीं। उस मोहनी को यदि कहीं वह छिन्न-भिन्न कर सके तो बिगड़ी तुरन्त बन सकती है। पर उसे तोड़ने का मंत्र कोई ओझा या पंडित भी नहीं जानता। उसे तोड़ने की शक्ति विधाता के अतिरिक्त शायद किसी के पास भी न हो। तब! वह अपने हृदय को सँभालती, आँसुओं को छिपाती मुसकराता हुआ मुख लिये उसी विधाता से प्रार्थना करेगी। यही उसका एक मात्र मंत्र होगा। यह सोचते-सोचते उसका मन किंचित स्वस्थ हो गया। वह उठी और खिड़की से बाहर झाँकने लगी।

संध्या हो गई थी, पर आकाश में डूबते हुए सूर्य की लालिमा अभी तक फैली हुई थी। उसने आकाश में इधर-उधर थिरकते जाते इक्के दुक्के मेघों को रक्तरंजित कर दिया था। दूर, बहुत

दूर, पक्षियों के दो एक झुंड भी श्माम बिंदुओं के जमघट से दीखते उड़े चले जा रहे थे अपने नीड़ों को। तारा सोचने लगी, रात भर वे अपने नीड़ों में विश्राम करेंगे भय-विहीन चिंता-रहित। दिन चढ़ने पर अपने अपने साथी को साथ लेकर फिर पंख फैलाये पवन से होड़ करते हुए रोमांस और भोजन की तलाश में आकाश को आर-पार करने लगेंगे। क्या उसका जीवन उन पक्षियों के जीवन सा न हो सकता था। पर क्या उनके जीवन में भी यह परिस्थिति न आ जाती होगी जिसके बीच में से होकर वह गुजर रही है, और आने पर क्या वे भी उसी ईर्ष्या और द्वेष के वशवर्ती हो जाते होंगे जो मनुष्य के विशेष गुण हो चुके हैं? नहीं, कदापि नहीं। उनका सौंदर्य देख कर कौन कह सकता है कि उनमें दंभ से ओत-प्रोत मनुष्य की यह दुर्बलताएँ होंगी। मनुष्य कितना क्षुद्र हो सकता है! तारा ने एक दीर्घ निःश्वास लिया और अपने स्थान पर आ बैठी। ठीक उसी समय नौकर ने प्रवेश किया।

'क्यों?' तारा ने पूछा।

'आप खाना किस समय खायँगे?'

'साहब के आने पर।'

'बहुत अच्छा पर—' नौकर रुक गया।

'क्या बात है? कुछ काम है तुम्हें क्या?' तारा ने फिर पूछा।

'मुझे आज सिनेमा देखना था।'

तारा के मुख पर व्यंग्य की मुसकान खेल उठी। इसे भी आज ही सिनेमा जाना था। उसे रोकना भी तो ठीक न होगा। हवाई आक्रमण के अनंतर नौकर काफी संख्या में भाग गये थे। जो रह गये

थे उनका मिज़ाज तेज़ रहता था। इसलिए तारा ने कोई आपत्ति न खड़ी की। 'तुम खाना बना कर रख दो और जाओ। मैं स्वयं परख लूँगी।' नौकर तेजी से खाना बनाने के लिए भाग गया और तारा बैठ गई पति की प्रतीक्षा में।

---

# बयालीसवाँ परिच्छेद

रमेश घर से तो यही सोच कर चला था कि केवल घूमकर लौट आयगा, पर थोड़ी ही दूर जाने पर उसने अपना विचार बदल दिया। शैला के साथ कुछ क्षण काटने का लोभ उसे निकट के टेलीफोन पर ले पहुँचा। दो ही चार मिनट में उसे शैला मिल भी गई।

'मैं घूमने निकला था,' रमेश कहने लगा, 'पर कुछ ही पग चलने पर तुम्हें मिलने को मन मचल उठा।'

'तो फिर आओ', शैला का स्वर स्वागत से ओत-प्रोत था 'कब तक पहुँचोगे ?'

'कोई बीस मिनट तक।'

'तो मैं तुम्हारी प्रतीक्षा क्लब के बाहर करूँगी।'

'बहुत अच्छा।' रमेश ने कहा और रिसीवर रख दिया।

शैला ने घड़ी की ओर देखा, सात बजने में बीस मिनट था। उन्हीं बीस मिनटों में उसे सारा शृंगार करना था। उसे किस रूप में उस रात प्रकट होना चाहिए वह सोचने लगी। वातावरण को देखते हुए भड़कीली सजधज उचित न होगी और बिलकुल सादापन आकर्षक न बन पड़ेगा। इसलिए उसे ऐसी वेश-भूषा अपनानी होगी जो दीखन

में सादी किंतु रोमांटिक आकर्षण से परिपूर्ण हो। उसने अपने कपड़ों की आलमारी खोल दी और एक-एक साड़ी तथा जंपर का निरीक्षण करने लगी। उस दिन फ्रॉक पहनने का तो प्रश्न ही न उठता था। काफी छान-बीन के बाद उसने एक हलके बैंगनी रंग की साड़ी तथा शरीर के वर्ण से मिलते-जुलते रंग का जंपर छाँटा। उनको बहुत ही धीमे किंतु उच्चकोटि के विलायती इत्र से छुआ कर पहन लिया। बालों को कस कर कंघी किया और मध्य में माँग निकाली। ओठों पर लिपस्टिक मली नहीं किन्तु उससे उन्हें छू अवश्य दिया। मुख पर मूल्यवान पाउडर को मल कर फिर उसे झाड़ दिया जिससे केवल उस की मादक-गंध मुख पर छाई रही। नाखूनों को उन्हीं के रंग के क्यूटेक्स से चमका लिया। मोजे तथा जूते भी शरीर से मिलते जुलते रंग के पहने। जब पूर्णरूपेण तैयार हो गई तो बड़े दर्पण के सम्मुख खड़ी होकर अपना निरीक्षण किया जिससे वह संतुष्ट हुई। उसका रंग-रूप सचमुच निखर उठा था और उसके वस्त्रों तथा शरीर से उठती हुई मधुर गंध ने उसे एक अद्भुत आकर्षण एक अनूठे लुभावनेपन से सज्जित कर दिया। रमेश पर आज वह पूर्ण विजय प्राप्त कर लेगी इसका उसे विश्वास हो गया। वह ओठों को बल देकर मुसकराई और घड़ी की ओर देखा। सात बजने वाले थे। धीरे-धीरे पग रखती हुई अपने जीवन के कुछ क्षण आनन्द से बिताने तथा किसी के जीवन को विध्वंस करने की चेष्टा में वह चल पड़ी।

जब वह बाहर पहुँची तो रमेश सड़क के उस पार ठहरती ट्राम से उतर रहा था। उसने मुसकरा कर उसका स्वागत किया और पूछा, 'कहाँ चलना होगा?'

रमेश ने सिर से पाँव तक शैला को देखा। दक्षिणी पवन के एक-दो झोंकों द्वारा उसके शरीर से फूटती हुई गंध रमेश के मस्तिष्क में पैठ गई। आनन्द से झूमता हुआ बोला, 'वहाँ जहाँ तुम हो और मैं हूँ और—'

'हो दूर तक फैला हुआ अठखेलियाँ करता हुआ हुगली का जल।' शैला ने उसका वाक्य समाप्त किया।

'चलो वहीं चलो, अपनी चिर परिचित बेंच पर।'

वे दोनों पवन पर उड़ते घाट पर जा पहुँचे। उनकी चिरपरिचित बेंच खाली पड़ी थी, मानो उनकी प्रतीक्षा में हो। दोनों उस पर जा बैठे। नदी में कुछ छोटी-मोटी डोंगियाँ और एक दो जहाज तैर रहे थे। कुछ क्षण दोनों उनकी ओर देखते रहे, फिर शैला ने एक दीर्घ निःश्वास लिया और बोली, 'एक दिन वैसे ही एक जहाज़ में मुझे भी यह देश छोड़ना होगा।'

'सचमुच?' रमेश के स्वर में थोड़ी चिंता थी।

'हाँ, कब तक यहाँ बैठ सकती हूँ। प्रतिदिन वहाँ से बुलावे आ रहे हैं कि पहुँच कर पिता की जायदाद को सँभालो।'

'कब तक जाना चाहती हो?'

'यह इस अकाल पर निर्भर है। यह जिम्मेदारी जो उठा चुकी हूँ, उसे तो पूरा निभाकर ही जाऊँगी। यदि आज दुर्भिक्ष समाप्त हो जाय तो कल यहाँ से चल दूँगी।' वह आधा क्षण चुप रही, 'मेरे लिए अब यहाँ है क्या?' यह कह कर उसने तिरछी नज़रों से रमेश की ओर देखा।

रमेश का हृदय बैठ गया। निराश स्वर में बोला, 'क्या तुम्हारे

लिए यहाँ कोई रोचकता नहीं, कोई बंधन नहीं ?'

शैला ने तुरन्त जवाब नहीं दिया। रमेश की ओर देख कर थोड़ा मुसकराई और बोली, 'एक बंधन अवश्य है किंतु—'

'कौन सा ?' रमेश ने धड़कते दिल से पूछा।

'तुम।'

'मैं ?' रमेश ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया, 'फिर किंतु क्या ?'

'किंतु यही कि तुम विवाहित हो, कर्तव्यों से बँधे हुए। मेरा तुम्हारे ऊपर अधिकार जमाना व्यर्थ है।'

रमेश सुनकर चकित हो गया। सोचने लगा यह कितनी सच्ची तथा स्पष्ट नारी है और नवीन का दल इसे रँगा हुआ सियार समझता है, 'पर क्या तुम मुझ पर अधिकार जमाना चाहती हो ?'

'यह मुझसे न पूछो। अपने हृदय की धड़कन को लाख छिपाया, सैकड़ों कोसों का अंतर देकर समझाया पर इसे न मानना था, न माना। तुम्हारे पीछे छाया बना कर मुझे खींचता चला जा रहा है पर—' शैला ने रुककर फिर एक दीर्घ निःश्वास लिया।

'और यदि मैं बंधन-मुक्त हो जाऊँ तो ?'

'क्या यह संभव है ?' शैला प्रसन्नता से उछल कर बोली।

'संभव !' रमेश किंचित् सोच में पड़ गया। फिर हाथों की मुट्ठियाँ बाँधता हुआ कहने लगा, 'क्यों नहीं। मैं अपने हृदय पर बलात्कार नहीं कर सकता। तारा मेरी विवाहिता पत्नी अवश्य है पर वह मुझे सुखी न कर सकेगी, मैं जानता हूँ।'

इतने में दो पक्षी नदी को पार करके विचित्र-सा शब्द करते उन

दोनों के ऊपर से उड़ते हुए निकल गये। रमेश को ऐसा लगा मानो उसके कथन की सत्यता पर अविश्वास करते हुए वे कुछ कह गये हों। पर उसने उनकी ओर अधिक ध्यान न दिया और उस कथन से शैला पर पड़े हुए प्रभाव की प्रतीक्षा करने लगा।

'यदि यह बात है' शैला एक-एक शब्द पर ठहरती हुई कहने लगी, 'तो मैं तो तुम्हारी हूँ ही।'

'सच ?'

'बिलकुल, पर तुम्हें थोड़ा त्याग करना होगा।'

'क्या ?'

'तुम्हें मेरे साथ इंगलैंड जाना होगा। चलोगे ?'

'अवश्य। तुम त्याग की बात कर रही हो पर मैं समझता हूँ तारा को छोड़ने के बाद मेरे लिए यहाँ रहना संभव ही न होगा।'

'फिर भी अच्छी तरह से सोच लो,' विजयोल्लास से उन्मत्त स्वर में शैला ने कहा 'मैं तुम्हारा पक्का निश्चय जानना चाहती हूँ।'

'मैंने पक्का निश्चय कर लिया।' रमेश ने शैला का हाथ ज़ोर से दबा लिया। वह गद्गद हो गई।

इसके अनंतर वे बिना बात किये एक दूसरे का हाथ पकड़े बहुत देर तक बैठे रहे। जब रात गहरी हो चली और आकाश में तारे झिलमिलाने लगे तो शैला बोली, 'अब चलना चाहिए। कौन जाने किस समय हवाई आक्रमण का सायरन बोलने लगे।'

'उससे तो तुम कभी घबराई नहीं।'

'पर आज घबरा रही हूँ। आज मुझे पुनर्जीवन मिला है। अब मैं मरना नहीं, जीना चाहती हूँ।' शैला उठ खड़ी हुई।

रमेश प्रसन्नता से फूल उठा। एकबार पुनः प्रशंसात्मक नेत्रों से शैला की ओर देखा और उसके साथ जा खड़ा हुआ। तब एक दूसरे से कंधा मिलाते हुए वे दोनों चल पड़े।

बड़ी सड़क पर पहुँच कर शैला तो पवन पर उड़ती हुई अपनी क्लब की ओर चल दी और रमेश स्वप्नों की सृष्टि रचता हुआ अपने घर की ओर जाने वाली ट्राम में जा सवार हुआ। ट्राम में उस समय विशेष भीड़ न थी। वह चुपके से एक कोने में जा बैठा और अपने भविष्य पर विचार करने लगा। उसे ऐसे लग रहा था मानो उसके जीवन का एक अद्भुत अध्याय खुलने जा रहा हो जिसमें चारों ओर नवीनता, सुनहलापन तथा मनमोहक पवन के हलके हलके झोंके होंगे। उसकी कल्पना द्वारा निर्मित-चित्रों में हरियाली थी, प्रकाश था, पर अंधकार की कहीं छाया तक न थी। यह उसे भूल कर भी न सूझता था कि वह ऊँची रास के स्थिर ज्योति वाले हीरे को छोड़ कर रंग-बिरंगे काँच के एक बनावटी टुकड़े पर रीझ गया था। रंगों के भड़कीले-पन ने उसे मोहित कर दिया। पर यह उसे कौन समझाये कि इन्द्र-धनुष के रंगों की भाँति उन रंगों का कोई अस्तित्व नहीं था। जैसे हवा के कुछ झोंके धुएँ के छोटे संसार द्वारा उस रंग-बिरंगे धनुष को छिन्न-भिन्न कर देते हैं उसी भाँति छोटी सी विपत्ति का उठता हुआ धुआँ उस काँच के टुकड़े के रंगों को धूमिल कर देगा।

# तैंतालीसवाँ परिच्छेद

रमेश जब घर पहुँचा तो उसने तारा को दफ्तर में ही उसकी प्रतीक्षा में बैठे पाया।

'घूम आये ?' तारा ने पूछा।

'हाँ।'

'कहीं दूर निकल गये थे, क्या ?'

'हाँ, हुगली के तट पर।'

'अकेले ?'

रमेश आधा क्षण असमंजस में पड़ा, फिर जवाब दिया, 'नहीं।'

तारा का माथा ठनका पर उसने सहज स्वर में पूछा, 'कौन था साथ में ?'

रमेश अपने भावों को मस्तिष्क में क्रम देने के लिए थोड़ा रुका, फिर कहने लगा, 'छिपाऊँगा नहीं, मेरे साथ शैला थी। यह अच्छा ही हुआ जो तुमने बात छेड़ दी। वैसे मैं स्वयं इस विषय पर तुमसे दो स्पष्ट शब्द कहने जा रहा था। सुनोगी ?'

'तुम बेखटके कहो', तारा के हृदय में उथल-पुथल मच गई पर उसे भीतर ही भीतर छिपाये हुए वह कहने लगी, 'जो कुछ तुम कहने जा रहे हो उसकी आशंका मुझे बहुत दिनों से है। इसलिए मैं तुम्हारी बातें सुनने के लिए पूरी तरह तैयार हूँ। सुनाओ।'

रमेश को ऐसे उत्तर की आशा न थी। एक क्षण के लिए वह

हक्का-बक्का रह गया फिर साहस बटोर कर आरम्भ किया, 'यह कि शैला के लिए मेरे हृदय में कोमल स्थान बहुत दिनों से था, यह शायद तुम से भी छिपा न हो ! पर उसके प्रति मेरे जो भाव थे उनका यथार्थ रूप क्या था, मैं आज तक जान न पाया था । सच पूछो तो मैंने उसे जानने से सदा मुँह छिपाया।'

'और आज तारों भरी रात तथा नदी के तट ने तुम्हें यथार्थ ज्ञान दे दिया।' तारा बीच में ही बोल उठी । उसने व्यंग्य को छिपाने का कोई प्रयत्न न किया।

'यही समझ लो' रमेश ज़रा खीझ कर बोला, 'आज मैंने अनुभव किया कि उसके प्रति जो मेरे भाव थे उन्हें प्रेम के अतिरिक्त कुछ कहा ही नहीं जा सकता। मैं उसके बिना नहीं रह सकता।'

तारा का हृदय टूक-टूक हो गया। नेत्र आँसुओं से झगड़ने लगे । उसे अपने पति से ऐसे दारुण शब्द सुनने पड़ेंगे यह उसकी कल्पना के पगले से पगले क्षण में भी नहीं झलका था । आँसुओं को पीकर मन को पत्थर बना कर वह ओठों को बल देकर मुसकराई, 'और तुमने यह भी अनुभव किया कि मेरे साथ तुम्हारा विवाह एक भूल थी। तुम ऐसा अद्भुत युवक मनमोहक शैला के योग्य है, न कि नीरस तारा के।'

रमेश का मुख कानों तक लाल हो गया और वह झल्ला कर बोला 'तुम मुझे व्यंग्य बाणों से छलनी कर देने पर भी शैला से विमुख न कर सकेगी। यह निश्चय रखो।'

'मैं तुम्हें किसी से विमुख नहीं करना चाहती ।' तारा ने आत्माभिमान से गरदन सीधी करते हुए कहा, 'अपने आपको आवश्यकता

से अधिक महत्त्व न दो। तुम शैला के ही नहीं समस्त नारी संसार के आदर्श युवक भले ही बन जाओ पर मेरी दृष्टि में तुम्हारा मूल्य जानते हो क्या है?'

'क्या?'

'यह कि तुम ऊँट की भाँति नकेल के दास हो।'

'मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा।' रमेश तड़प उठा।

'समझ ही कैसे सकते हो, पर मैं आज समझा न सकूँगी मुझे और बहुत से काम करने हैं।'

'अर्थात्?'

'तुम्हें खाना खिलाना है और फिर लंबी यात्रा की तैयारी करनी है। जो कुछ तुमने अभी कहा है उसके अनंतर तुम्हारा और मेरा इकट्ठा रहना एक क्षण के लिए भी संभव नहीं।'

'इसका मतलब यह हुआ—'

तारा ने उसे आगे नहीं बढ़ने दिया, 'इसका मतलब यह नहीं कि मैं अभी चल दूँगी। यात्रा तो मैं कल ही करूँगी। हाँ, आज तुम्हें इसी दफ्तर में सोना होगा। नौकर अब सिनेमा देख कर लौटने ही वाला होगा। उसके लौटते ही तुम्हारी चारपाई उधर भिजवा दूँगी।'

"और यदि मैं तुम्हें यह सूचना दूँ कि मैं कुछ ही दिन में इंगलैंड जा रहा हूँ और दिन चढ़ते ही मैं कहीं अन्यत्र ठिकाना कर लूँगा तब?"

'तब भी मैं यहाँ कैसे रह सकती हूँ। यहाँ दो एक दिन में नये संपादक आ धमकेंगे। खैर यह सब कुछ प्रातः देखा जायगा। चलो, उठो और खाना खाओ।'

'मुझे भूख नहीं है।'

'क्या खा कर आये हो?'

'नहीं, खा कर तो नहीं आया।'

'तो फिर?'

'चलो।'

रमेश और उसके पीछे तारा खाने वाले कमरे की ओर चल दिये। पाँच ही मिनट में तारा ने खाना परस दिया, पर खाया उन दोनों में से किसी से भी न गया। जिनके हृदय में बवंडर मचा हो उनके गले के नीचे खाना कैसे उतर सकता था। एक एक कौर खा कर वे दोनों उठ खड़े हुए।

इस बीच में नौकर आ गया। तारा ने रमेश की चारपाई तथा बिस्तर दफ्तर में भेज दिया और अपने कमरे में जाकर अंदर से साँकल लगा ली। कई क्षण तो बीत गये उसे नेत्रों के आँसुओं से लगी झड़ी को शान्त करने में। जब आँसू कुछ थमे तो वह अपने भविष्य पर विचार करने लगी। उसने जाने का निश्चय तो कर लिया पर वह जाय कहाँ। आरम्भ में तो उसे अपने माता-पिता के पास शिमला ही जाना होगा, पर वहाँ जीवन भर तो रह नहीं सकती थी। उसकी समस्या किसी के सहारे पड़े रहने से तो हल हो न सकती थी। पर वह जानती भी तो कुछ न थी। हाँ, पति का दफ्तर घर के साथ-साथ होने के कारण 'आर्ट क्रिटिक' के सम्पादन की थोड़ी बहुत समझ उसे अवश्य थी। पर उस नौसिखिया को 'आर्ट क्रिटिक' तो क्या कोई छोटी-मोटी पत्रिका भी स्थान देने पर राज़ी न हो सके शायद। पर यदि कहीं उसे यहाँ कुछ काम मिल जाय तो कैसा अच्छा

हो। वह अपने माता-पिता के पास कौन सा मुँह लेकर जायगी। क्या वह गगन भैया से बात करे। नहीं, यह ठीक नहीं होगा। ऊपर से तो शायद वह कुछ न कहें पर मन ही मन वे उसके दुस्साहस पर हँसेंगे ? नहीं, उसकी यात्रा से बचने की कोई सूरत नहीं हो सकती। उसे अपना काला मुँह लेकर माता-पिता के पास जाना ही होगा, उनके जीवन में हाहाकार छेड़ने। काश, वह इस दुस्संवाद से उन्हें बचा सके। पर कहाँ ? ऐसे ही विचारों से उलझती वह चारपाई पर शरीर रगड़ने लगी। इस भाँति सोचते और बेसिर-पैर के स्वप्नों में झपकियाँ लेते हुए उसने रात काट दी।

प्रातः उठ कर जब तारा दफ्तर में पहुँची तो रमेश जा चुका था। उसकी लिखने वाली मेज़ पर एक पत्र पड़ा हुआ था। तारा ने उसे उठा लिया और पढ़ने लगी।

'प्रिय तारा' रमेश ने लिखा था, 'अपनी प्रतिज्ञानुसार मैं कहीं और ठिकाना करने जा रहा हूँ। कृपया मेरे जाने की सूचना गगन को दे देना ताकि वह पत्र के संपादन आदि का प्रबन्ध कर सके। तुम्हारी यात्रा तथा फुटकल खर्च के लिए दो सौ का चेक इसी पत्र के साथ टाँक रहा हूँ। आशा है इससे तुम्हारा काम चल जायगा।'

तारा ने पत्र पढ़ कर वहीं मेज़ पर रख दिया और गगन को टेलीफोन किया। गगन कहीं इधर उधर था इसलिए तारा को लगभग पाँच मिनट की प्रतीक्षा के अनंतर वह मिला।

'कुशल तो है !' गगन ने पूछा।

'आपके मित्र आज प्रातः यहाँ से चले गये हैं। जो पत्र वे छोड़ गये हैं वह जरा सुन लीजिये।'

'सुनाओ।'

तारा ने पत्र पढ़ कर सुना दिया। सुन कर गगन बोला, 'अब।'

'अब यही,' तारा कहने लगी, 'आप अपना यह दफ्तर सँभालो। मैं भी आज जा रही हूँ।'

'कहाँ?'

'शिमला।'

'शिमला?' तारा को ऐसे लगा जैसे गगन कुछ सोच रहा हो, 'पर क्या तुम्हारा यहाँ से चला जाना आवश्यक है?'

'आवश्यक तो नहीं पर मेरा यहाँ अब काम ही क्या है?'

गगन ने कुछ देर जवाब न दिया फिर प्रार्थनात्मक स्वर में बोला, 'क्या कुछ दिनों के लिए ठहर न सकोगी, मेरा मतलब था यदि 'आर्ट क्रिटिक' का हाथ वाला अंक तुम निकाल जातीं तो अच्छा रहता।'

'तो आप समझते हैं कि मैं इस योग्य हूँ।'

'क्यों नहीं? मैंने तुम्हें रमेश का हाथ बटाते हुए कई बार देखा है।'

'यदि यह बात है तो क्या पत्र-स्वामी अपने मित्र से कह कर मुझे आप पत्र के उप-संपादक का स्थान दिलवा सकेंगे? मुझे कुछ काम तो करना ही होगा। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मैं काम बहुत मेहनत से करूँगी।'

'मैं आसानी से यह काम कर सकूँगा। मेरे मित्र के लिए इससे अच्छा सौदा और हो ही क्या सकता है। उनसे बात करके मैं दो-एक दिन में वेतनादि तय करवा दूँगा!'

तारा ने रिसीवर रख दिया और संतोष की एक साँस ली। यद्यपि उसने जाने का निश्चय कर लिया था पर कम से कम पति के जहाज चढ़ने तक वह वहीं रह कर तेल और उसकी धार को देखना चाहती थी, पर अब उसे जाने की कोई जल्दी न थी और माता-पिता तक अपना दुस्संवाद पहुँचाना भी वह स्थगित कर सकती थी। यह सोचती हुई वह संपादक की कुरसी पर जा बैठी और नये अंक की सामग्री जुटाने में प्रयत्नशील हो गई। अंक के लेखों को थोड़ा बहुत क्रम रमेश दे गया था। आरंभ के एक दो लेखों में थोड़ा बहुत संशोधन भी वह कर गया था। तारा ने कुछ उलट फेर कर लेखों आदि के क्रम को ठीक ढंग से बाँध दिया। फिर संशोधन के लिए कुछ लेख छाँट कर उनमें कहीं-कहीं छेड़-छाड़ करने लगी। लगभग दो घंटों में उसने तीन-चार लेख देख लिये और फिर बैठी वह संपादीकय टिप्पणियाँ लिखने। इसमें वह पग-पग पर अड़ने लगी। तब उसने गगन को टेलीफोन किया।

'क्या आज्ञा है?' गगन ने पूछा।

'भैया, बहुत कुछ काम तो मैंने कर लिया है पर टिप्पणियों पर आकर अटक गई हूँ। अब आपकी सहायता के बिना न चल सकूँगी। कब आओगे?'

'शाम को किसी समय आऊँगा, अब आराम करो।'

'बहुत अच्छा।' तारा ने कहा, किंतु पुनः जाकर अपनी टिप्पणियों में उलझ गई।

———

# चवालीसवाँ परिच्छेद

टॉमस कुक के आफिस से बाहर निकलते हुए शैला ने रमेश से कहा, 'चलो यह झंझट भी मिटा। दस दिन तक यहाँ से चल देंगे। रास्ते के भय से घबराते तो नहीं तुम ?'

'बिलकुल नहीं। मृत्यु तो तभी आती है जब लिखी हो। इसलिए चिंता करना व्यर्थ है।'

उनके सामने ही बुक स्टाल था। बातें करते हुए दोनों उसमें घुस गये और सब से पहले पत्रिकाओं वाले कोने की ओर बढ़े। दृष्टि दौड़ाते ही रमेश ने 'आर्ट क्रिटिक' का नया अंक वहाँ पड़ा देखा। उसने अंक उठाते हुए कहा, 'नया अंक निकल आया !'

'यह तुम्हारी पत्रिका है ?' शैला ने पूछा।

'कभी थी।'

'अब कौन है इसका संपादक ?'

'अभी पता चल जायगा' रमेश ने कहा और पत्रिका के पृष्ठ उलट कर देखने लगा। फिर चकित स्वर में बोला, 'तारा ! वह यहीं है क्या ?'

'क्या इसका संपादन तारा ने किया है ?'

'हाँ।' रमेश ने कहा और धीरे-धीरे पत्रिका के पृष्ठ उलटने लगा। प्रत्येक लेख की एकाध लकीर इधर से उधर से पढ़ता हुआ वह संपादकीय पृष्ठ पर जा पहुँचा। पहले तो उसने उन टिप्पणियों पर उड़ती हुई दृष्टि डाली, फिर ध्यानपूर्वक शुरू से पढ़ना आरम्भ कर दिया और तब तक नहीं छोड़ा जब तक अंतिम विराम तक नहीं पहुँचा।

फिर सहसा उसके मुख से निकला, 'खूब लिखा है। तारा में प्रतिभा है, यह तो मैं जानता था, पर 'कला' पर इतना सुन्दर लिख सकती है इसका मुझे ज्ञान न था।'

शैला, जिसका संतोष हाथों से निकल रहा था, ज़रा खीझ कर व्यंग्य से बोली, 'तो तुम समझते हो उसी ने यह सब लिखा है।'

'उसी ने नहीं तो और किसने?' रमेश ने आश्चर्य से शैला की ओर देखा।

'गगन ने, और किसने?'

'गगन की सहायता तारा ने अवश्य ली होगी यह मैं मानता हूँ, पर यह गगन की शैली नहीं।'

शैला नाक-भौं सिकोड़ कर चुप रही। रमेश उस अंक की एक प्रति तथा कुछ अन्य पत्रिकाएँ आदि खरीद कर शैला को साथ लिये बाहर निकल आया। क्या तारा ठुकराने योग्य है, उसके मस्तिष्क में सहसा यह प्रश्न कौंध गया। फिर उसने शैला की ओर देखा। उसके भूरे बालों पर स्थायी लहरें बनी हुई थीं। मस्तक तेज से दमक रहा था, रंग ताज़े गुलाब सा, होंठ पूर्णतया विकसित और नेत्रों में जादू। नहीं, उसका स्थान शैला के ही पास है, तारा के निकट नहीं। वह सोच में डूबा हुआ चुपचाप चलता गया। शैला ने उसकी यह भाव-भंगी देखी तो ज़रा चिंतित उत्सुकता से पूछा, 'क्या सोच रहे हो?'

'कुछ भी तो नहीं।' रमेश ने हड़बड़ा कर जवाब दिया।

शैला मुसकराई, 'मैं बताऊँ?'

'बताओ।'

'तुम आर्ट क्रिटिक की तारा के स्वप्न देख रहे हो। छिपाना मत।'

१५

'छिपाऊँगा नहीं। मैं यह सोच रहा था कि क्या तारा सचमुच ठुकराने योग्य थी?'

शैला के हृदय को जो धक्का पहुँचा वह भीतर ही भीतर दबा गई, 'फिर?'

'फिर यही कि वह जगमगाता तारा अवश्य है पर पूर्णिमा का चाँद तो नहीं।'

शैला प्रसन्नता से खिल उठी, 'विलायत में जाकर जानते हो मैं क्या करूँगी?'

'क्या?'

'मैं तुम्हें शिक्षित बनाऊँगी।'

'कैसे?'

'अभी से मत पूछो। वहाँ पहुँच कर सब रहस्य खुल जायेंगे।'

'भला क्या अब भी लंदन की फ्लीट स्ट्रीट में लेखक लोग इकठे होते होंगे?' रमेश ने प्रश्न किया।

'यदि वहाँ नहीं तो कहीं दूसरी जगह होते होंगे, मैं तुम्हें वहीं ले चलूँगी। और यह तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम्हारे जैसा प्रतिभा-संपन्न मनुष्य कुछ ही दिनों में उन साहित्यिक देवों के मध्य में अपने लिए स्थान बना लेगा।'

'और मुझे रत्ती भर भी इस बात का विश्वास नहीं। मैं सब तरह से अधूरा हूँ। साहित्य ज्ञान में कच्चा, कला की पहली सीढ़ी पर भटकने वाला, सांसारिक अनुभव से हीन। नहीं, मुझसे वहाँ के सामाजिक जीवन से पार न पाया जायगा। मैं तो यह चाहता हूँ कि संसार की दृष्टि से छिप कर समुद्र के किसी एकांत तट पर एक नीड़

बनाऊँ और दिन भर बैठा हुआ कभी तुम्हें देखूँ और कभी सागर की उत्ताल तरंगों के विभिन्न रूपों का निरीक्षण करूँ।'

शैला खिलखिला कर हँसी और धीरे से बोली, 'जानते हो कहाँ हो तुम ?'

रमेश सचमुच अपने इर्द-गिर्द के वातावरण से बेखबर हो गया था। अपने को झटका देकर उसने चारों ओर देखा। वे लोगों की भीड़ को चीरते हुए सड़क के किनारे जा रहे थे। सड़क के मध्य में ट्राम तथा बसें इधर से उधर भागती दौड़ती जाती थीं। रमेश मुसकराया, 'चलो किसी रेस्तराँ में चलें। वहीं चाय भी पियेंगे और शेष बातचीत भी करेंगे।'

'पर मैं आज कॉफी पीना चाहती हूँ।'

'तो कॉफी हाउस चलो, पर वहाँ भीड़ बहुत होगी।'

'कोई बात नहीं।'

वे दोनों कॉफी हाउस की ओर चल दिये। वहाँ भीड़ तो उस दिन भी खूब थी पर इन दोनों को बड़े हॉल के एकांत कोने में बैठने के लिए जगह मिल गई। कॉफी का आर्डर देकर रमेश बोला, 'अब कहो।'

'मैं कहूँ ? वक्ता तो तुम थे, मैं तो एक श्रोता मात्र थी।'

'मेरी वक्तृता स्फूर्ति की चेरी है' रमेश ने कहा, 'मूड आ जाय तो अनायास बरसने लगे और नहीं तो लाख यत्न करने पर भी जिह्वा पर मुहर लग जाय।'

'अब मूड का क्या हाल है ?'

'कॉफी की राह देख रहा है।'

इस बीच में कॉफी आ गई। शैला ने दोनों के लिए कॉफी प्यालों

में डाल दी और एक प्याला रमेश की ओर बढ़ा दिया। रमेश ने कॉफी के एक दो घूँट पीकर जेब से सिगरेट केस निकाला और शैला की ओर देखा। शैला ने सिर हिला दिया। रमेश ने एक सिगरेट छाँटा और उसे सुलगा कर धुएँ का संसार रचने लगा। शैला धीरे-धीरे कॉफी पीने लगी। कुछ देर दोनों चुप रहे। शैला इस बीच में 'आर्ट क्रिटिक' के अतिरिक्त सभी पत्रिकाओं के पृष्ठ उलटती रही। 'आर्ट क्रिटिक' को वह हाथ में लेती अवश्य थी किंतु आधा क्षण बिना खोले ही देखकर दूसरी पत्रिकाओं में छिपा देती थी। इस तरह उसने कोई दो तीन बार किया। शैला का यह व्यवहार रमेश की दृष्टि से छिप न सका पर उसने कहा कुछ नहीं। हाँ, इस बात ने उसके हृदय के भीतरी कोने में शैला के प्रति कुप्रभाव की एक हलकी सी रेखा अवश्य खींच दी।

कॉफी समाप्त कर देने पर भी वे बहुत देर वहाँ बैठे रहे। ज्यों ज्यों संध्या बढ़ती जाती थी भीड़ कम होती जाती थी। जब काफी अँधेरा हो गया तो कुछ ही लोग वहाँ रह गये।

'अब तो उठो।' शैला ने कहा।

'चलो।' रमेश उठ खड़ा हुआ।

वे दोनों कॉफी हाउस से बाहर आकर भी बहुत देर इधर-उधर घूमते रहे। जब रात अच्छी तरह भीग गई तो वे एक दूसरे से बिछुड़े। शैला को उसकी क्लब तक पहुँचा कर रमेश ने अपने होटल की शरण ली।

अपने कमरे में पहुँच कर उसने पुनः तारा द्वारा संपादित अंक को ध्यानपूर्वक पढ़ा। फिर खाने की तलाश में चल दिया।

———

# पैंतालीसवाँ परिच्छेद

बंगाल का दुर्भिक्ष शनैः शनैः दूर हो रहा था। दुर्भिक्ष सहायक समितियाँ अपने कार्यक्रम का चक्र संकुचित कर रही थीं। कुछ ही दिनों में वे कार्यकर्ता तथा कार्यकर्त्रियाँ जो दूसरे प्रांतों से अपने भूख से पीड़ित भाई-बहनों की सहायता के लिए आये हुए थे, कलकत्ता छोड़ जायँगे। यही सोचकर एक सहायक समिति के प्रधान ने यह उचित समझा कि उनके जाने से पहले मुख्य कार्यकर्ताओं आदि को एक भोज दिया जाय। उसने उस भोज का प्रबंध कलकत्ता के ग्रैंड होटल में किया।

गगन, नवीन, तारा, प्रतिमा रमेश और शैला तथा ऐसे ही पचास-साठ के लगभग मुख्य कार्यकर्ता उस भोज में आमंत्रित थे। भोज का समय रात्रि के साढ़े आठ का रखा गया था और सभी अतिथियों से समय पर पहुँचने की विशेष प्रार्थना की गई थी। इसलिए साढ़े आठ से पहले ही प्रायः सब लोग वहाँ पहुँच गये थे।

अतिथि तीन दलों में विभक्त थे। एक दल था कलकत्तावासियों का, दूसरा दल था भारत के अन्य प्रांत के लोगों का और तीसरा दल था भारत के बाहर के व्यक्तियों का। सभी में स्त्री-पुरुषों का सम्मिश्रण था। पहले दो दल तो काफी संख्या में थे, तीसरे दल में कुल मिला कर दस व्यक्ति थे, तीन स्त्रियाँ—एक शैला और दो अन्य तथा सात पुरुष। इनमें अधिकतर तो अंग्रेज़ अथवा ऐंग्लो-इंडियन

थे पर दो एक अमेरिकन भी थे। इसे प्रांतीयता कहिये अथवा जातीय मत-भेद के नाम से पुकारिये, पर इन तीनों दलों के स्त्री-पुरुष अलग-अलग अपने दल के साथ ही बैठे।

भोज का प्रबंध मुख्यतया गगन के हाथ में था और प्रबंध इतना सुचारु था कि कहीं भी चूकने का भय न था। मालूम देता था कि आमंत्रणकर्ता के लिए धन का कुछ मूल्य न था। कुरसियों पर बैठते ही बढ़िया से बढ़िया पेय पदार्थ बैरों की फौज पेश करने लगी। सोडा, देशी शरबत, शिकंजबीन आसव, इंगलिस्तान, फ्रांस, इटली और न जाने कहाँ कहाँ की मदिरा की नदियाँ सी बह रही थीं। खाद्य सामग्रियों में मांसाहारी तथा निरामिषभोजियों के लिए अलग अलग प्रबंध था। खाने की इतनी भिन्न-भिन्न तथा नई चीज़ें बनी हुई थीं कि खानेवाले तो अवश्य थक गये पर नई से नई चीज़ों का तार नहीं टूट रहा था।

भारतीय दलों में से तो किसी किसी ने ही मदिरा को छुआ, पर विलायती दल में तो मदिरा के दौर ही चल रहे थे। क्या पुरुष क्या स्त्रियाँ एक के बाद एक प्याले पर प्याले पिये जा रहे थे। शैला भी इस व्यसन से अछूती न थी। वह भी अपने दल के वातावरण में पूरी तरह बह गई थी। कुछ ही देर में इस दल के मस्तिष्क हाथों से निकल गये। कुछ तो उलूकों की भांति चुप हो गये और कुछ की जबान कैंची सी चलने लगी। वे हा हा ही ही करते हुए 'मदिरा, और मदिरा' की पुकार करने लगे। नया प्याला हाथ में लेते हुए शैला ऊँचे स्वर में बोली, "खाओ, पीओ, मौज करो, यही जीवन है, यही जीवन का ध्येय है।'

वह एक बार नहीं अनेक बार इस वाक्य को दुहराने लगी। यहाँ तक कि सारे हॉल में यह शब्द गूँजने लगे। सब के नेत्र शैला पर गड़ गये पर वह बेखटके अपना पाठ रटती चली गई।

रमेश खानेवाली मेज़ के एक कोने में बैठा हुआ इस दृश्य को देख रहा था। पहले तो उसने शैला के व्यवहार को उनके देश के रिवाज़ की पृष्ठि-भूमि में देखा और उसे विशेष महत्त्व न दिया, यद्यपि उसे यह सब कुछ अच्छा न लग रहा था। उसके मन में शैला के मन की जो मूर्ति बनी हुई थी उसका रूप थोड़ा विकृत अवश्य हुआ पर उसने उसपर ध्यान न दिया। यह क्षणिक आवेग है उसने सोचा, शैला अभी अपना असली रूप पा जायगी। पर कहाँ! शैला का मतवालापन क्षण-प्रतिक्षण बढ़ता चला जा रहा था और जब उसने अपने आपको ऐसी हास्यास्पद स्थिति में धकेल दिया कि उसके अपने दल के लोग भी उसका मज़ाक उड़ाने लगे तो रमेश न सँभल सका। शैला को मदिरा का पहला प्याला हाथ में पकड़ते हुए देखकर उसके हृदय में जो ग्लानि की एक पतली सी रेखा खिंची थी उसका रूप अब विकराल हो चला। वह आज धूमिल बादल बन कर उसके और शैला के मध्य में आ खड़ी हुई। रमेश के लिए वहाँ बैठना दूभर हो उठा। वह चुपके से उठा और सब की आँखें बचाता हुआ धीरे-धीरे वहाँ से खिसक गया।

रात्रि के दस बजे के लगभग भोज समाप्त हुआ और सब लोगों ने घर की राह ली। उनमें रमेश नहीं था, यह सब से पहले नवीन ने अनुभव किया।

'वह गया कहाँ?' गगन बोला।

'अपनी शैला की करतूत से लज्जित होकर कहीं भाग निकला है।' नवीन ने कहा।

'पर कहाँ ?' गगन की जिह्वा पर फिर वही प्रश्न था, 'भला अब भी वह शैला के साथ जायगा क्या ?'

'कौन कह सकता है,' नवीन का स्वर-संदिग्ध था, 'हमारा पुराना रमेश आज की घटना के बाद कभी शैला की ओर देखता भी न, पर नये रमेश की कौन जाने।'

नया रमेश सचमुच उनके लिए पहेली बना हुआ था। यही सोचते हुए वे सब लोग गगन द्वारा प्रस्तुत मोटर में आ बैठे।

'तारा को घर पहुँचा कर तब तुम्हें ठिकाने लगाऊँगा।' गगन ने नवीन और प्रतिमा से कहा और तेज़ी से तारा के घर की ओर मोटर को ले उड़ा।

कुछ ही क्षणों में मोटर तारा के फ्लैट के नीचे जा खड़ी हुई। मोटर से उतरते ही तारा की दृष्टि ऊपर की ओर गई।

'दफ्तर में बत्ती जल रही है !' उसने चकित वाणी में कहा।

'नौकर ने जलाई होगी।' प्रतिमा बोली।

'नौकर यह साहस नहीं कर सकता।'

'फिर ?' गगन भी मोटर से उतर आया। उसे देख कर नवीन और प्रतिमा भी बाहर आ गये, 'चलो चल कर देखते हैं।'

सब लोग धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ते हुए ऊपर पहुँचे और उत्सुकता से दफ्तर में प्रवेश किया। सब की दृष्टि इकट्ठी कमरे में कुरसी पर बैठे हुए रमेश पर पड़ी।

'तुम ?' सब के मुख से एक साथ निकला।

'हाँ मैं ?'

'यहाँ कैसे ?' नवीन ने पूछा।

'पथ-भ्रांत पथिक क्या घर नहीं लौट सकता ? वैसे मैं एक कर्तव्य पालन करने के लिए यहाँ आया हूँ।'

'कौन-सा ?' इस बार गगन बोला।

'तारा से क्षमा माँगने का। यद्यपि उससे क्षमा पाने का मुझे कोई अधिकार नहीं पर यदि कहीं उसका हृदय इतना विशाल हो जाय कि वह मुझे पुनः अपना ले तो आयु-पर्यंत गुण मानूँगा। तारा तुम मुझे क्षमा—'

तारा के नेत्र सजल हो गये, इसके आगे उसने रमेश को बोलने नहीं दिया। तेजी से आगे बढ़कर उसका मुँह बंद कर दिया। 'बस हो गया। अब मुझे काँटों में न घसीटो।'

'और अब शैला का क्या होगा ?' नवीन ने शरारत भरे स्वर में पूछा।

'उस पत्र से उसे संतोष करना होगा।' रमेश ने जवाब दिया, 'उसे उठाकर जरा ऊँचे स्वर में पढ़ो तो। वह रहा मेज़ पर।'

नवीन ने आगे बढ़ कर पत्र उठा लिया और उसे पढ़ने लगा।

'प्रिय शैला,' रमेश ने लिखा था, 'रात तुम्हारा जो रूप मैंने देखा है वह मैं कभी सँभाल नहीं सकता। इसलिए अब मैं तुम्हारा साथ न दे सकूँगा। हम दोनों एक ही युग के प्राणी अवश्य हैं पर तुम्हारा और हमारा संदेश अलग है। मैं तारा के पास जा रहा हूँ क्योंकि मेरा और उसका संदेश एक है। यदि उसने मुझे अपना

लिया तो कृतकृत्य हो जाऊँगा और यदि ठुकरा दिया तो मुझे किंचित् भी खेद नहीं होगा।'

जब नवीन ने पत्र समाप्त किया तो रमेश बोला, 'इसे प्रातः शैला के पास पहुँचवा देना।'

'प्रातः तक कौन प्रतीक्षा करेगा' नवीन प्रसन्नता से ओत-प्रोत स्वर में बोला, 'मैं अभी पहुँचूँगा, अभी। हमारे पास मोटर है।'

'मोटर? वह कहाँ से आ गई?' रमेश ने पूछा।

'तुम्हारे मामा की है।' गगन ने कहा।

'मेरे मामा की! वे कहाँ हैं?' रमेश ने चकित स्वर में पूछा।

'अभी तक तो यहीं हैं पर प्रातः हवाई जहाज से दिल्ली चले जायँगे क्योंकि जिस काम के लिए वे यहाँ आये थे वह आज संपन्न हो गया।'

'वे बहुत दिनों से यहाँ थे क्या?' इस बार तारा ने पूछा, 'और उनका काम क्या था?'

'वे कई दिनों से इधर हैं और आये थे रमेश को राह पर लाने।'

'मुझे? पर उन्होंने तो कुछ किया नहीं।'

'यह भोज जानते हो किसने दिया था?'

'उन्होंने?' नवीन उछल पड़ा, 'भई बहुत खूब। शैला का असली रूप प्रदर्शित करने के लिए क्या ढंग निकाला उन्होंने! जैसा सुना था उन्हें वैसा ही पाया।'

'उनकी आज्ञा तो नहीं', गगन कहने लगा, 'पर यदि तुम लोग चाहो तो एक और रहस्य का उद्घाटन मैं कर सकता हूँ। बताऊँ?'

'अवश्य।' सब के मुख से निकला और उत्सुकता से उनके कान गगन की ओर लग गये।

'आर्ट क्रिटिक उनका है।'

'उनका है?' रमेश के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

'तुम्हें काम पर लगाने के लिए उन्होंने इसे ऊँचे दामों में खरीदा था।'

'मुझे? और मैं मुँह पर कालिख पोत कर उनके किये कराये को मिट्टी में मिलाने चला था। आपको पता है गगन भैया, कि वे कहाँ ठहरे हैं?'

'उसी ग्रैंड होटल में, जहाँ से हम लोग अभी आ रहे हैं।'

'भैया, मुझे अभी ले चलोगे वहाँ?' तारा ने अनुनय से कहा, 'मैं उनकी चरण-रज मस्तक पर लगाना चाहती हूँ।

'अवश्य मेरी नन्ही दीदी।'

'क्या मेरे लिए भी मोटर में थोड़ा स्थान बन सकेगा?' रमेश ने पूछा, 'उनकी झिड़कियों के लिए मैं अब प्रतीक्षा नहीं कर सकता। पर यदि स्थान न हो तो मैं पैदल ही पहुँच जाऊँगा।'

'चलो, मोटर में सब के लिए स्थान है।'

एक ही क्षण में सब लोग मोटर में जा बैठे। उनके बैठते ही उन पुजारियों के दल को लेकर मोटर चल दी, जो सोमेश से अनूठे देवता की आरती उतारने जा रहा था।